Foundation

वर्तमान धर्म की भाषा

R
२ ५
४ ७

Gurukul Kan

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओशो

वर्तमान

धर्म की भाषा

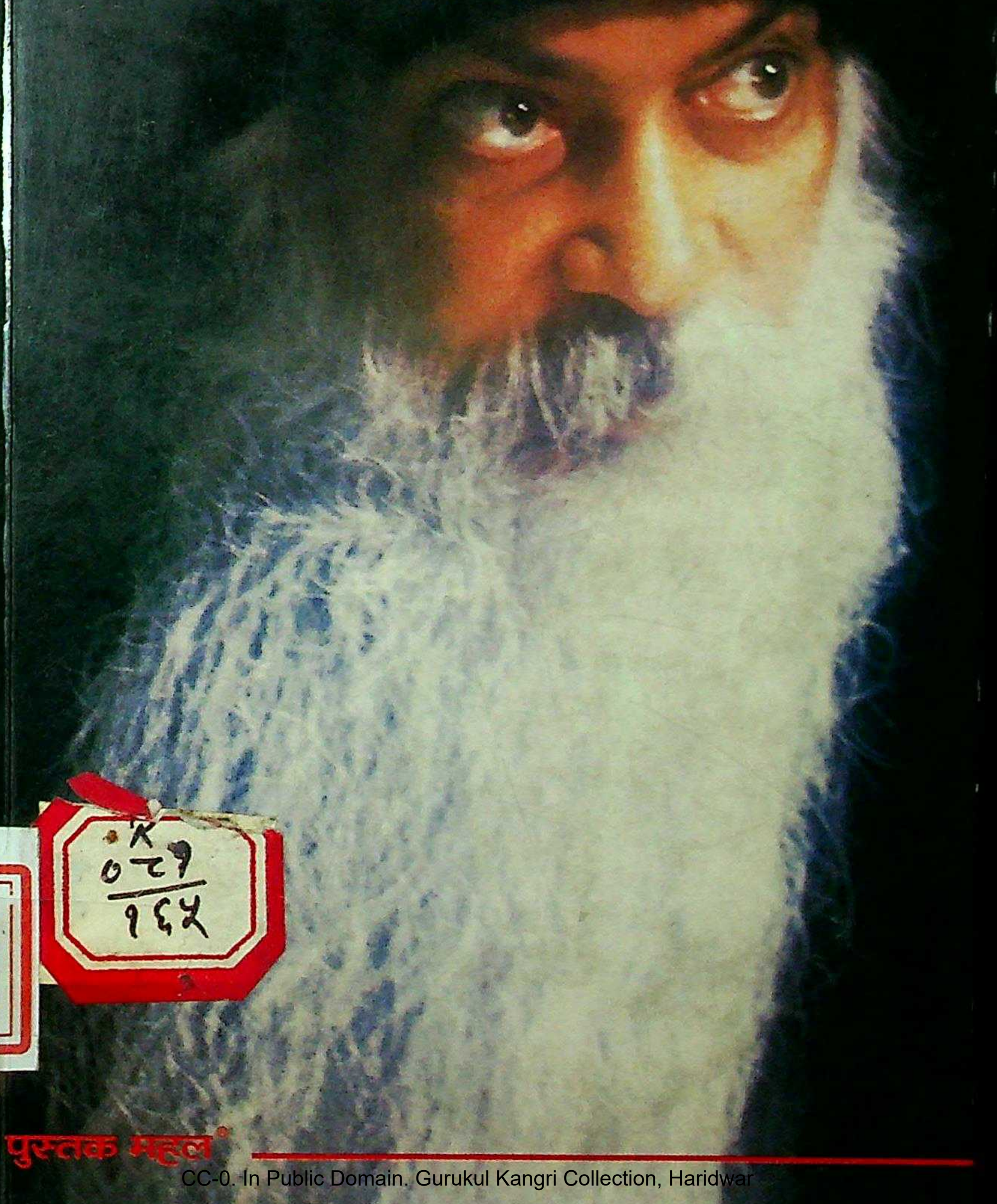

R
0८१
१६५

पुस्तक महल®

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R
०८१
१६५

121473

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
0-27/1६५

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या......... ..   आगत संख्या 121473

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३०वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमानः धर्म की भाषा

''...काव्य की भाषा समझना शुरू करो,
क्योंकि धर्म की भाषा
काव्य की भाषा के बहुत क़रीब है।
.....
धर्म काव्य के बहुत क़रीब है।
.....
और जो काव्य को समझने में असमर्थ है,
वह परमात्मा को न समझ पाएगा,
क्योंकि परमात्मा परम काव्य है।
.....
विज्ञान से हटो काव्य पर,
फिर काव्य से छलांग लो धर्म में-
ये तीन सीढ़ियां हैं।
मंदिर की तीन सीढ़ियां
और तब तुम मंदिर के अंतर्गृह में प्रवेश पा सकोगे...।

–ओशो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

20वीं शताब्दी के महान् दार्शनिक

ओशो

की आध्यात्मिक पुस्तकें

परम-उपलब्धि के सोपान

साधना का परम लक्ष्य

समर्पण की अंजुली

प्रेम का झरोखा

पुस्तक महल की पुस्तकें

देश-भर के रेलवे, रोडवेज़ तथा अन्य प्रमुख बुक स्टॉलों पर उपलब्ध हैं। अपनी मनपसंद पुस्तकों की किसी भी नज़दीकी बुक स्टॉल से मांग करें। यदि न मिलें, तो हमें पत्र लिखें। हम आपको तुरंत वी.पी.पी. द्वारा भेज देंगे। पुस्तक महल की पुस्तकों की निरंतर जानकारी पाने के लिए विस्तृत सूची-पत्र मंगवाएं या हमारी वेबसाइट देखें www.pustakmahal.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान: धर्म की भाषा

121473

121473

ओशो

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

पुस्तक महल ®
दिल्ली • बंगलोर • पटना • मुंबई • हैदराबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक
पुस्तक महल® दिल्ली-110006

विक्रय केन्द्र
- 6686, खारी बावली, दिल्ली-110006 *फोन*: 2944314, 3911979
- 10-B, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
  फोन: 3268292-93, 3279900 • *फैक्स*: 011-3280567

प्रशासनिक कार्यालय
F-2/16, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
फोन: 3276539, 3272783, 3272784 • *फैक्स*: 011-3260518
E-mail: pustakmahal@vsnl.com • *Website*: www.pustakmahal.com

शाखा कार्यालय

बंगलोर : 22/2, मिशन रोड (शामा राव कम्पाउंड), बंगलोर-560027
फोन: 2234025 • *फैक्स*: 080-2240209
E-mail: rapidexblr@satyam.net.in

पटना : खेमका हाउस, पहली मंजिल, अशोक राजपथ, पटना-800004
टेलीफैक्स: 0612-673644

मुंबई : 23-25, जाओबा वाडी (वी.आई.पी. शोरूम के सामने), ठाकुरद्वार, मुंबई-400002 *फोन*: 2010941 • *फैक्स*: 022-2053387

हैदराबाद : 5-1-707/1, ब्रिज भवन, बैंक स्ट्रीट, कोटी, हैदराबाद-500095
फोन: 4737530 • *फैक्स*: 4737290

I.S.B.N. 81-223-0707-8

VARTAMAN: DHARM KI BHASHA

Copyright © 2001, Osho International Foundation.
All rights reserved.

संपादन : स्वामी योग प्रताप भारती
संकलन : स्वामी अरुण सत्यार्थी, मा आनंद दिव्या
संयोजन : स्वामी अमानो मनीष

Originally published in Hindi under the title: **Sapna Yeh Sansaar, Ch. 13-16**

Copyright © 1981, Osho International Foundation.
Copyright reserved.
Osho® is a registered trademark of Osho International Foundation, used under license.

सर्वाधिकार सुरक्षित: इस पुस्तक अथवा इस पुस्तक के किसी अंश को इलेक्ट्रॉनिक, मैकेनिकल, फोटोकॉपी, रिकॉर्डिंग या अन्य सूचना-संग्रह साधनों एवं माध्यमों द्वारा मुद्रित अथवा प्रकाशित करने के पूर्व ओशो इंटरनेशनल फाउंडेशन की लिखित अनुमति अनिवार्य है।

प्रथम संस्करण : अप्रैल, 2001

Printed at: Unique Color Carton, New Delhi-110064.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक निमंत्रण

ओशो के प्रवचनों को पढ़ना, उन्हें सुनना अपने आप में एक आनंद है। इनके द्वारा आप अपने जीवन में एक अपूर्व क्रांति की पदचाप सुन सकते हैं, लेकिन यह केवल प्रारंभ है, शुभ आरंभ है। इन प्रवचनों को पढ़ते हुए आपने महसूस किया होगा कि ओशो का मूल संदेश है- ध्यान। ध्यान की भूमि पर ही प्रेम के, आनंद के, उत्सव के फूल खिलते हैं। ध्यान आमूल क्रांति है।

निश्चित ही आप भी चाहेंगे कि आपके जीवन में ऐसी आमूल क्रांति हो, आप भी एक ऐसी आबो-हवा को उपलब्ध करें, जहां आप अपने आपसे परिचित हो सकें, आत्म-अनुभूति की दिशा में कुछ क़दम उठा सकें, कोई ऐसा स्थान जहां और भी कुछ लोग इस दिशा में गतिमान हों।

ओशो ने एक ऐसी ही ध्यानमय, उत्सवमय आबो-हवा वाला ऊर्जा-क्षेत्र निर्मित किया है पूना में **ओशो कम्यून इंटरनेशनल**। यहां ओशो की उपस्थिति में हजारों लोगों ने ध्यान की गहराइयों को छुआ है। सतत ध्यान के द्वारा यह स्थान ध्यान की एक ऐसी सघन ऊर्जा से आविष्ट हो गया है कि ओशो के देह त्याग के बाद, आज भी आप उनकी ऊर्जा से स्पंदित इस बुद्धक्षेत्र में ओशो की उपस्थिति की अनुभूति कर सकते हैं तथा रूपांतरित हो सकते हैं।

विश्व के लगभग सौ देशों से लोग यहां आकर इस अंतर्राष्ट्रीय वातावरण में ध्यान का रसास्वादन करते हैं। दुनिया में जितने भी प्रकार के लोग हैं-अपनी आधारभूत कोटियों में-ओशो ने उन सबके लिए विशेष प्रकार की ध्यान-विधियों को ईजाद किया है। आज विश्व की समस्त साधना पद्धतियों की विधियां यहां एक ही छत के नीचे मौजूद हैं। **ओशो कम्यून इंटरनेशनल** विश्व-भर में एकमात्र ऐसा केंद्र है, जहां पर सभी राष्ट्रों और धर्मों के लोग अपने अनुकूल ध्यान प्रयोगों के द्वारा एक साथ रूपांतरित हो सकते हैं। ओशो कम्यून ऐसे ही एक नए मनुष्य की जन्मभूमि है, एक क्रांति-स्थल है। इसमें आपका स्वागत है।

अतिरिक्त जानकारी के लिए संपर्क-सूत्र

ओशो कम्यून इंटरनेशनल

17 कोरेगांव पार्क, पुणे-411001 (महाराष्ट्र)

फोन: 020-6128562, 6136655, **फैक्स :** 020-6124181

E-mail: commune@osho.net • ***Website:*** www.osho.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंदर के पृष्ठों में ...

1. राग का अंतिम चरण है वैराग्य ... 9

2. धर्म की भाषा है: वर्तमान ... 47

3. करामाति यह खेल अंत पछितायगा ... 77

4. गहन से भी गहन प्रेम है सत्संग ... 107

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1.

राग का अंतिम चरण है वैराग्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन है दिन चार, भजन करि लीजिये।
तन मन धन सब वारि संत पर दीजिये।।
संतहिं से सब होइ, जो चाहै सो करैं।
अरे हां, पलटू संग लगे भगवान, संत से वे डरैं।।

ऋद्धि सिद्धि से बैर, संत दुरियावते।
इन्द्रासन वैकुण्ठ विष्ठा सम जानते।।
करते अविरल भक्ति, प्यास हरिनाम की।
अरे हां, पलटू संत न चाहैं मुक्ति तुच्छ केहि काम की।।

आगम कहैं न संत, भड़ेरिया कहत हैं।
संत न औषधि देत, बैद यह करत हैं।।
झार फूंक ताबीज ओझा को काम है।
अरे हां, पलटू संत रहित परपंच राम को नाम है।।

हरिजन हरि हैं एक सबद के सार में
जो चाहैं सो करैं संत दरबार में।।
तुरत मिलावैं नाम एक ही बात में।
अरे हां, पलटू लाली मेंहदी बीच छिपी है पात में।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते बट्टा ब्याज कसब है जगत का।
माया में हैं लीन; बहाना भगति का।।
कहीं तनिक नहिं छुई गया बैराग है।
अरे हां, पलटू जनमें पूत कपूत लगाया दाग है।।

पगरी धरा उतारि टका छह सात का।
मिला दुसाला आय रुपैया साठ का।।
गोड़ धरे कछु देहि मुंड़ाये मूंड़के।
अरे हां, पलटू ऐसा है रुजगार कीजिये ढूंढ़िके।।

मसक्कत ना ह्वै सकी मुंड़ाया मूड़ तब।
सेंति-मेंति में खाय मिला औसान अब।।
तब नागा ह्वै लिहिन, रहे ना काम के।
अरे हां, पलटू मारि-पीटिके, खाहिं सो बेटा राम के।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि योग प्रीतम ने एक पत्र में मुझे लिखा है—

ओशो !

कौन हो तुम ?
प्राण की अमराइयों में
कोकिल से कूकते
मधु घोल जाते हो
या हृदय की गहन घाटी में
मचलते भाव-निर्झर से
शून्य के कुछ अर्थ अनुपम खोल जाते हो।
कौन तुम ?
आकाश-से विस्तीर्ण
जिसमें पंख अपने खोल
मैं उन्मुक्त उड़ता जा रहा अश्रान्त,
कर रहा हूं संतरण कलहंस-सा अनथक
तुम्हारे प्रेम-रंजित मानसरोवर में
बना उद्भ्रांत
आग यह कैसी अभीप्सा की
निरंतर जल रही अंतःकरण में
फैलती ही जा रही जो,
राग यह कैसा उठा है आज
अंतर्बीन से मेरी
कि सारा विश्व जगमग हो उठा है
यह तुम्हारी ही जलाई आग है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह जानता हूं,
यह तुम्हारा ही जगाया राग है अनुराग का
पहचानता हूं।
पर तुम्हें जब खोजता हूं
जग-जलधि में
थाह मिल पाती नहीं है,
जो तुम्हारी दिव्य मंजिल से मिले
वह राह मिल पाती नहीं है।
चेतना पर
जो अमृत वरदान-सा बनकर बरसते हो
हृदय में
भाव के माधुर्य से भीगा हुआ
संगीत बनकर जो सरसते हो,
जो स्व निर्मित सृष्टि में ही छिप गये हो
एक अनबुझ राज-से वह
कौन हो तुम ?

परमात्मा प्रगट से भी प्रगट, अप्रगट से भी अप्रगट है। पास से भी पास, दूर से भी दूर है। आंख हो तो पास, आंख न हो तो दूर। और आंख हमारे पास नहीं। सूरज द्वार पर नाच रहा है, अपनी सतरंगी किरणों को लेकर, पर अंधे को पता कैसे चले ? या जो आंख बंद किये बैठा है, द्वार-दरवाजे बंद किये बैठा है, उसे अनुभव कैसे हो ? सूरज की तरफ से कोई कमी नहीं, कोई कृपणता नहीं है, कृपणता है तो हमारी तरफ से। हम आंख खोलने में भी संकोच करते हैं। द्वार पर दस्तक दे परमात्मा, तो भी हम अनसुनी कर जाते हैं। सुन भी लेते हैं तो अनसुनी करते हैं।

और ऐसा नहीं है कि उसने द्वार पर दस्तक न दी हो। ऐसा कोई द्वार ही नहीं है जिस पर वह दस्तक न देता हो। और एक बार नहीं, अनेक बार देता है। अनेक बार नहीं, अनंत बार देता है। सुबह देता है, दोपहर देता है, सांझ देता है, रात देता है। हर भावदशा में तुम्हें झकझोरता है। कभी सूरज की किरणों में, कभी चांद की किरणों में, कभी हवा के झोंकों में, कभी फूलों की गंध में, कभी पक्षियों की चहचहाहट में—कितने रूपों में आता है ! मगर हमारी कठिनाई यह है कि हम उसके इस अनंत रूप को समाने के लिए राजी नहीं। हमने तो उसकी छोटी-छोटी प्रतिमाएं बना ली हैं। हम तो चाहते हैं वह हमारी प्रतिमा के रूप में आए। हमने शर्तें बांध रखी हैं। कि ऐसे ही आओगे तो स्वीकार होओगे। और हमारी शर्तें मानने को वह मजबूर नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी शर्तें वह मान भी नहीं सकता।

हमारी क्षुद्र शर्तें मान ले तो वह विराट न रह जाए। हमारी अपेक्षाएं पूरी नहीं की जा सकतीं। हमें अपेक्षाएं छोड़नी होंगी। और तब अचानक सारा रहस्य खुल जाता है। और जब मैं कहता हूं सारा रहस्य खुल जाता है, तो ऐसा मत समझ लेना कि तुम्हें सारे प्रश्नों के उत्तर मिल जाएंगे। उत्तर तो एक भी प्रश्न का नहीं मिलता, लेकिन सारे प्रश्न गिर जाते हैं। जब मैं कहता हूं सब रहस्य खुल जाता है, तो मेरा अर्थ है : सारे प्रश्न गिर जाते हैं। पूछने वाला ही घुल जाता है, मिल जाता है, डूब जाता है। पूछने वाला ही नहीं बचता। मन ही पिघल जाता है। जिसमें प्रश्न लगते थे, प्रश्न उगते थे, वह मूल स्रोत ही जड़ से कट जाता है। प्रश्न गिर जाते हैं, एक निष्प्रश्न मौन छा जाता है। उस निष्प्रश्न मौन में ही जाना जाता है क्या है।

कौन हो तुम ?
प्राण की अमराइयों में
कोकिल से कूकते
मधु घोल जाते हो
या हृदय की गहन घाटी में
मचलते भाव-निर्झर से
शून्य के कुछ अर्थ अनुपम खोल जाते हो।

नहीं उत्तर मिलेगा कि कौन है वह। लेकिन प्रश्न गिर जाएगा। और प्रश्न का गिर जाना ही सार्थक है। उत्तर से कुछ काम बनता भी नहीं। क्योंकि हर उत्तर में नये प्रश्न लग जाते हैं। हर उत्तर नये प्रश्नों को ही लाता है। एक की जगह दस प्रश्न ले आता है। मजा तो तभी है जब तुम्हारे भीतर प्रश्न ही न उठे। तुम्हारे भीतर प्रश्न का चिह्न ही खो जाए। उस अवस्था को भक्त भजन कहते हैं; जहां प्रश्न का कोई चिह्न नहीं। ध्यानी समाधि कहते हैं; जहां प्रश्न का कोई चिह्न नहीं। जहां निष्प्रश्न, निस्तरंग चैतन्य है, वहां जान लिया गया सब।

और फिर एक बात तुम्हें दोहरा दूं : जब मैं कहता हूं जान लिया गया सब, तो यह मत समझना कि तुम बड़े ज्ञानी हो जाओगे, कि तुम बड़े पंडित हो जाओगे। नहीं, जब तुम सब जानोगे तो तुम बिलकुल निर्दोष हो जाओगे। पांडित्य का तो दूर-दूर तक पता न चलेगा। एक सरलता होगी। एक सहजस्फूर्त चैतन्य का आविर्भाव होगा। खुलेगा एक आकाश जिसका न ओर है न छोर है। लेकिन, ज्ञाता तुम नहीं बन जाओगे। मुट्ठी में तुम्हारे ज्ञान नहीं आ जाएगा। तुम तो बचोगे ही नहीं। बचेगा एक माधुर्य, एक स्वाद अमृत का। तुम्हारे रोएं-रोएं में प्रतिध्वनित होगी एक मधुर ध्वनि, एक मधुर रव—अनाहत का, ओंकार का। लेकिन तुम ज्ञानी नहीं हो जाओगे। उत्तर ही पास न हों तो तुम ज्ञानी कैसे होओगे ? जहां रहस्य का अनुभव होता है, वहां व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्दोष हो जाता है। या व्यक्ति निर्दोष हो जाए, तो रहस्य का अनुभव हो जाता है। निर्दोषिता तुम्हारी तरफ से और परमात्मा की तरफ से रहस्य की वर्षा हो जाती है।

और ध्यान रखना, दिन बहुत थोड़े हैं। समय बहुत कम है। राह खोजनी है कि निर्दोष हो सको। राह खोजनी है कि उसके रहस्य से जुड़ सको।

थाह मिल पाती नहीं है,
जो तुम्हारी दिव्य मंजिल से मिले
वह राह मिल पाती नहीं है।

शायद हम गलत दिशा में खोजते हैं। हम बाहर खोजते हैं, इसलिए राह नहीं मिल पाती।

स्वयं में उतरना पड़े; राह वहां है। अपने ही अंतस्तल की सीढ़ियों में उतरना है। अपने ही चेतना के कुएं में उतरना है; राह वहां है। स्वयं को जानने में ही उसे जाना जाता है। आत्मपरिचय ही उसका परिचय बन जाता है। और हम खोजते हैं वेद में, कुरान में, बाइबिल में, धम्मपद में, जेन्दा अवेस्ता में—और हम कहां-कहां नहीं खोजते ! हम मुर्दा किताबों में खोजते हैं और वह तुम्हारे भीतर जीवंत बैठा है, तुम्हारे चैतन्य की तरह। वह खोजने वाले में खोजने वाले की तरह बैठा है। वह कोई लक्ष्य नहीं है दूर कि तुम्हें तीर बनना है और उस लक्ष्य से जा कर जुड़ जाना है। वह तुम्हारे भीतर, तुम्हारे साथ, तुम्हारा अंतरतम है। तुम्हारा स्वभाव है। जब तक बाहर खोजोगे, नहीं पा सकोगे। जब भीतर झांकोगे, खोना भी चाहो तो नहीं खो सकोगे।

जिन्होंने बाहर खोजा, व्यर्थ भटके हैं; जिन्होंने भीतर खोजा, वे हंसे मूढ़ता पर अपनी, औरों की, कि कैसा पागलपन है ! जो संपदा अपने घर में पड़ी थी, हम कहां-कहां न खोजते फिरे ? किन-किन द्वारों पर झोली न फैलाई ? कहां-कहां दुतकारे नहीं गये—'आगे बढ़ो !' जहां गये, वहीं—'आगे बढ़ो !' अपने हाथ भिखारी हुए, जब कि सम्राट की भांति पैदा हुए थे।

मगर समय बहुत कम है। इस सम्राट से परिचित होना जरूरी है। पलटू कहते हैं, 'जीवन है दिन चार...।'

उम्रे-दराज मांग कर लाये थे चार दिन

वह जो उम्र का मालिक है, उम्र का बांटने वाला वह जो विधाता है, उससे चार दिन मांग कर ले आये थे।

उम्रे-दराज मांग कर लाये थे चार दिन,
दो आरजू में कट गये दो इंतजार में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो आशाओं में कट गये, वासना में कट गये, कामना में कट गये, वासना के बीज बोने में कट गये—और फिर दो इस इंतजार में कि अब बीजों में से निकलते होंगे अंकुर, कि अब पौधे लगेंगे, कि अब फूल लगेंगे। कि अब फल लगेंगे। ऐसे ही लोग दिन काट लेते हैं जीवन के। आधी जिन्दगी कामना में, आधी जिन्दगी—अब कामना पकी, अब पकी ! हम सब शेखचिल्ली हैं।

तुमने शेखचिल्ली की कहानी सुनी न !

वह एक खेत में चोरी करने घुस गया। बाजरे के भुट्टे पक गये थे, उनकी सुगंध हवा में थी। बाजरे के भुट्टे सिर उठाए खड़े थे। खेत के किसान का दूर-दूर कुछ पता न था। शेखचिल्ली ने सोचा, यह मौका छोड़ना ठीक नहीं। और बाजरे के पौधे इतने बड़े थे कि उनके भीतर छिप जाए तो पता भी न चले। तो छिप गया। इकट्ठा करने लगा बाजरे के भुट्टे। झोली भर ली पूरी। बड़ा प्रसन्न था। सोचने लगा, बाजार में बेचूंगा, इतने दाम मिलेंगे। मुर्गी खरीद लूंगा। अंडे होंगे—रोज-रोज अंडे देगी मुर्गी—फिर जल्दी गाय खरीद लूंगा, फिर भैंस और फिर यात्रा बढ़ती चली गयी।

अभी खेत में ही है। अभी भुट्टे इकट्ठे ही कर रहा है। लेकिन मन बहुत दूर की यात्राओं पर निकल गया। यहां तक कि ख्याल आया उसे कि जब भैंस से काफी दूध बेच लूंगा और भैंस के बच्चे होंगे, उनको भी बेच लूंगा, इतना धन हो जाएगा कि खेत ही खरीद लूंगा। यह खेत प्यारा है; इसी खेत को खरीद लूंगा। और तभी मन में एक डर आया कि चोर घुस जाए खेत में, फिर ? कोई भुट्टे तोड़ ले जाए, फिर ? तो कहा, यह खेल नहीं मेरे खेत से भुट्टे तोड़ना। खड़े होकर ऐसी आवाज दूंगा कि मीलों तक दहाड़ हो जाएगी। और खड़े हो उसने आवाज दी—'सावधान ! !' और किसान जिसका खेत था, वह आ गया। चोर पकड़ा गया सारे भुट्टों के साथ।

किसान भी चौंका, उसने कहा कि चोरी मेरी समझ में आती है, थोड़ी-बहुत चोरी होती ही है, मगर यह खड़े हो कर 'सावधान' क्यों चिल्लाए ? यह मेरी समझ में नहीं आता। अगर तुम इसका राज मुझे बता दो तो मैं तुम्हें छोड़ दूं, भुट्टों सहित छोड़ दूं। वह चोर कहने लगा, यह न पूछो तो अच्छा ! तुम्हें जो सजा देनी हो दे लो, मगर यह राज मैं न कह सकूंगा कि कैसे मैंने 'सावधान' कहा। इसमें मेरी बड़ी दीनता है; इसमें मेरी बड़ी मूढ़ता है।

नहीं माना किसान तो कहानी बतानी पड़ी। ऐसे तो कहानी पता चली शेखचिल्ली की।

अभी कुछ भी न हुआ था और बात कहां से कहां तक पहुंच गयी। बात में से बात निकलती गयी। कामना में से कामना निकलती गयी, नये-नये अंकुर खिलते गये।

दो दिन तो हम कामना में बिता देते हैं, जो कि व्यर्थ गये, क्योंकि कामना के किसी बीज से काम्य उपलब्ध नहीं होता। कामना का बीज दग्ध होता है तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम्य उपलब्ध होता है। कामना के बीज से काम्य उपलब्ध नहीं होता। और फिर दो बीज बो कर हम बैठते हैं, प्रतीक्षा करते हैं कि अब...कि अब, कि अब आया वसंत, कि अब आयी ऋतु। कि आखिर इसी तरह कामना करने वालों ने तो कहावत गढ़ ली है कि उसकी दुनिया में देर है अंधेर नहीं है। तो देर तो काफी हो गयी, अंधेर तो उसकी दुनिया में है नहीं, बस अब आता ही होगा फल ! अब स्वर्णमुद्राएं बरसती ही होंगी ! और ऐसे ही शेखचिल्लियों ने विचार कर लिये हैं कि जब वह देता है, छप्पर फाड़ कर देता है।

दो दिन कट जाते हैं कामना में, दो दिन कट जाते हैं इंतजार में। और चार ही दिन हमारे पास हैं। चार दिन भी कहां हैं !

अगर आदमी की जिन्दगी को गौर से देखो तो यह वक्तव्य सही मालूम होगा—'जीवन है दिन चार'...।

चार दिन प्रतीक हैं।

इस देश में हमने जीवन को चार हिस्सों में बांटा है। पच्चीस साल—अगर सौ साल आदमी की जिन्दगी हम कल्पित कर लें, अनुमानित कर लें—तो पहला दिन पच्चीस साल, वे कट जाते हैं शिक्षा में विश्वविद्यालय में, गुरुकुल में। फिर दूसरा दिन, पच्चीस साल गृहस्थ। वे कट जाते हैं दुकानदारी, शादी-विवाह, बाल-बच्चे। फिर तीसरा दिन हमने माना है वानप्रस्थ। इस आशा में कि अब जंगल की तरफ जाएंगे। अब घर-गृहस्थी से काम निबटा, अब बच्चे भी बड़े हो गये। पचहत्तर वर्ष की उम्र तक जंगल जाने की आकांक्षा। और फिर चौथा दिन संन्यास का; पचहत्तर से सौ वर्ष। फिर प्रभु को स्मरण करेंगे। लेकिन जिन्दगी सौ साल की होती कहां ! कल का भी भरोसा नहीं है। इसलिए जो लोग सोचते हैं कि अन्तिम चरण में, पचहत्तर और सौ साल के बीच में संन्यस्त हो जाएंगे, प्रभु का स्मरण करेंगे, भजन में डूबेंगे, वे चूक जाएंगे। फिर एक बात और ख्याल रखना, कि वह जो तीन दिन तुमने गुजारे हैं गलत, वे इतनी आसानी से पीछा नहीं छोड़ देंगे। वे आदत बन जाएंगे। वे अंत तक तुम्हारा पीछा करेंगे।

इसलिए महावीर और बुद्ध ने एक महाक्रांति की इस देश में। इस देश के आध्यात्मिक इतिहास में महावीर और बुद्ध से ज्यादा ज्योतिर्मय और नाम नहीं है। क्योंकि उन्होंने बहुत अर्थों में क्रांति की। यह जो चार का विभाजन था, ये जो जीवन के चार आश्रम थे, उन्होंने खंडित कर दिये, छिन्न-भिन्न कर दिये। क्योंकि उन्होंने कहा, कल का तो भरोसा नहीं है, तुम सौ साल का हिसाब लगा रहे हो ! संन्यास कल नहीं, आज। संन्यास घड़ी-भर बाद नहीं, अभी। भारत के पंडित-पुरोहित महावीर और बुद्ध को आज भी क्षमा नहीं कर पाए हैं। और उसका कारण है। क्योंकि अगर संन्यास आज, तो पंडित-पुरोहित का उपयोग आज ही व्यर्थ हो गया। संन्यासी को क्या लेना पंडित-पुरोहित से ? गृहस्थ होता तो बच्चे होते, यज्ञोपवीत होता, हवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता, सत्यनारायण की कथा होती; पूजा भी करवानी होती, दीवाली, होली, उत्सव होते; पंडित-पुजारी को भेंट भी देनी होती। स्वयं संन्यस्त हो गया, स्वयं ध्यान के जगत में लीन हो गया, अब पंडित-पुजारी के पास देने को उसे क्या है ? संन्यस्त हुआ अर्थात् संतों से जुड़ गया। जो संतों से जुड़ गया, उसके लिए पंडित-पुजारी दो कौड़ी के हो गये, खिलौने हो गये। अब वह बच्चा नहीं रहा कि खिलौनों में उलझा रहे। महावीर और बुद्ध ने यह कह कर कि संन्यास आज, पंडित-पुरोहित के पैर के नीचे से जमीन खींच ली। इसलिए अगर ब्राह्मण उन्हें क्षमा नहीं कर पाया तो कुछ आश्चर्य नहीं है। आज भी नहीं कर पाया। पच्चीस सौ साल बीत गये हैं, लेकिन उसकी नाराजगी भयंकर है।

पच्चीस साल विद्यार्थी रहते तो भी पंडित के पास रहना पड़ता। कौन पढ़ाता ? कौन व्याकरण, कौन संस्कृत समझाता ? पंडित ही समझाता। फिर पच्चीस साल गृहस्थ रहते तो पंडित ही...जन्म से लेकर मरने तक सारा हिसाब पंडित के हाथ में है। जन्मपत्री बनाता, जन्मकुण्डली बनाता; बच्चे के संस्कार देता; विवाह करवाता। फिर पचास वर्ष में वानप्रस्थ होते तो किससे पूछते ? वही पंडित वानप्रस्थ होने की शिक्षा देता। और जो पचहत्तर वर्ष तक मूढ़ता में जिआ और पंडित के सहारे जिआ, वह अगर संन्यस्त भी होता पचहत्तर वर्ष में तो भी इसी पंडित से उसका संन्यास घटने वाला था। इस पंडित को भी संन्यास नहीं घटा है, वह उसे संन्यास की भी दीक्षा दे देता। यह जिंदगी चार दिन की ऐसे ही बीत जाती।

महावीर ने यह चार का गणित, बुद्ध ने यह चार का गणित तोड़ दिया। कहा कि न तो चार आश्रम हैं और न चार वर्ण। न तो कोई ब्राह्मण है, न कोई क्षत्रिय, न कोई शूद्र, न कोई वैश्य। सभी शूद्र हैं। जो ज्ञान को उपलब्ध हो जाए, वह ब्राह्मण। बुद्ध ने कहा : ब्रह्म को जो जाने सो ब्राह्मण। और कल का कोई भरोसा नहीं है, इसलिए आज, तत्क्षण जो जागने को तैयार है, वही संन्यस्त। भारत की तो सारी-की-सारी आधारशिला इन्हीं चारों पर टिकी थी—चार वर्ण और चार आश्रम। यह पूरा गणित तोड़ दिया बुद्ध और महावीर ने।

मगर पंडित हारे नहीं। बुद्ध-महावीर के जाते ही उन्होंने फिर अपना जाल फैला लिया—और भी मजबूती से फैला लिया और भी सुरक्षा से फैला लिया कि फिर कोई दोबारा न तोड़ पाए। पच्चीस सौ साल में फिर बहुत कोशिश हुई—कबीर ने कोशिश की, नानक ने कोशिश की, पलटू ने कोशिश की, नहीं टूटा, नहीं टूटा।

भारत की छाती पर पंडित का बड़ा जाल है। भारत का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है कि भारत पंडितों के हाथ में है। इनके कारण अतीत से मुक्त नहीं हो पाता। और जिन्दगी छोटी है। और पंडित का जाल बड़ा है।

जीवन है दिन चार भजन करि लीजिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टालो मत कल पर। ओशो को याद करना हो तो अभी कर लो। कल की तो बात ही मत उठाना। जिसने कहा, कल, उसने कहा, नहीं। जिसने कहा, नहीं, उसने कहा, कभी नहीं। ओशो को स्थगित नहीं किया जा सकता। प्रेम को कोई स्थगित करता है, टालता है ? प्रेम के लिए तो आतुरता होती है कि अभी हो। पलटू कहते हैं, भजन कर लो। कोई बहाने न खोजो। बहाने खोजे, बहुत महंगे पड़ेंगे। फिर बहुत पछताओगे। फिर पछताने से भी कुछ होगा नहीं।

भजन का क्या अर्थ होता ? बैठ कर मंजीरा बजा लिया, कि बैठ कर राम-नाम की धुन कर ली, कि राम-नाम का अखण्ड पाठ कर लिया ? नहीं, इन औपचारिकताओं से भजन नहीं होता। भजन का तो अर्थ है : प्राण प्रभु के प्रेम में पगें; एक धुन भीतर बजती रहे, अहर्निश; उठते, बैठते एक स्मरण सतत बना रहे; एक धारा, अंतर्धारा बहती रहे—प्रभु की। जो देखो, उसमें प्रभु दिखाई पड़े। जो करो, उसमें प्रभु दिखाई पड़े। जहां चलो, जहां बैठो, वहां तीर्थ अनुभव हो; क्योंकि वह सर्वव्यापी है। जिस भूमि पर हम चलते, उसकी भूमि; जिस भूमि पर बैठते, उसकी भूमि।

सारा जगत परम पुनीत है, पावन है, क्योंकि परमात्मा से आपूर है।

बोलो तो उससे बोलना; सुनो तो उसको सुनना; हवाएं वृक्षों से गुजरें तो उसकी आवाज स्मरण रखना; कोयल पुकारने लगे दूर से तो उसने ही पुकारा है कोयल के रूप में, ऐसा अनुभव करना। ऐसी प्रतीति की सघनता का नाम भजन है। बैठ गये और कोई बंधी-बंधायी पंक्तियां दोहरा लीं, तो भजन नहीं होता। तोतारटंत है; भजन का धोखा है।

और ध्यान रखना, धोखे सस्ते होते हैं, मुफ्त होते हैं। भजन करना तो एक अपूर्व कीमिया है। तुम्हारे सारे जीवन को एक नया रंग दे जाएगा भजन, एक नई शैली।

इति हुई इतिहास की यदि, नेति का धर ध्यान, मन !
सेति हा हा हेति सुनकर, धर न उस पर कान, मन !

कल्पना के कल्पतरु पर यदि न खिलता फूल मौलिक,
हो न हो हो गई कोई मूल के प्रति भूल मौलिक;
मूल से तू मौलि तक फिर रच नया सोपान, मन !

वज्रकीलित कोकिला का कंठ यदि अमराइयों में,
वज्र को मत देख, बनकर बीज गल गराइयों में;
विसर्जन से मांग सर्जन का पुनः वरदान, मन !

दूर हंसध्वनि गई, आई-गई यदि प्रतिध्वनि है,
छिन्न होकर गगन से यदि खिन्न पथराई अवनि है;
शून्य के अन्तःकरण में सुन अतल का गान, मन !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
R
8-27/192

अनसुनी रहती नहीं है अनसुनी आवाज़ कोई,
अलख सुनता है कहीं जब सिसकता है साज़ कोई;
हो न कुछ गुंजान में जब, साध फिर सुनसान, मन !

'...नेति का धर ध्यान, मन !' भजन की पहली प्रक्रिया : नेति-नेति। जो-जो तुमने मान रखा है मूल्यवान, उस सब से मूल्य को खींच लेना है। धन को मूल्यवान माना है, कहना : नहीं, यह नहीं। मकान को मूल्यवान माना है, कहना : नहीं, यह नहीं। नाते-रिश्तों को मूल्यवान माना है, कहना : नहीं यह नहीं। नेति-नेति से अब तक तुमने मूल्यों का जो एक जगत निर्माण किया है, उसकी आधारशिला खींच लो। जिस दिन तुम्हारे सारे तथाकथित, झूठे, कृत्रिम मूल्य गिर जाएंगे, उस दिन तुम्हें पता चलेगा : 'इति-इति'। फ़िर जो शेष रह जाएगा, मानवीय मूल्यों के हट जाने के बाद जो निसर्ग शेष रह जाएगा, वही है, वही है।

'यह नहीं', 'यह नहीं'—यह मनुष्य के मूल्यों के खंडन की प्रक्रिया। फिर जब सारे मनुष्य-मूल्य खंडित हो गये, तब जो शेष रह गया—जो तुमने नहीं बनाया है, जिसमें तुम्हारा कोई हाथ नहीं है; जो तुमसे पहले था, तुम हो तो है, तुम नहीं होओगे तो भी होगा; जो तुमसे बाहर भी है और तुम्हारे भीतर भी है—फिर जब वही शेष रह गया, शुद्ध निसर्ग, तब एक प्रतिध्वनि भीतर उठती है—'यही है', 'यही है'। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'। उस दिन अनुभव होता है : सब वही है।

-83473

इति हुई इतिहास की यदि, नेति का धर ध्यान, मन !
सेति हा हा हेति सुनकर, धर न उस पर कान, मन !

अब तक तो हमने जो भी किया है, बड़ा भूल-चूक भरा है। मूल से ही भूल है।

कल्पना के कल्पतरु पर यदि न खिलता फूल मौलिक,

अगर तुम्हारे जीवन में कमल नहीं खिल रहा है, तो पुनर्विचार करो ! अगर तुम्हारी झाड़ी पर गुलाब नहीं उग रहे हैं, तो पुनर्विचार करो !

कल्पना के कल्पतरु पर यदि न खिलता फूल मौलिक,
हो न हो हो गई कोई मूल के प्रति भूल मौलिक;
मूल से तू मौलि तक फिर रच नया सोपान, मन !

अब हमें फिर एक नयी सीढ़ी बनानी पड़ेगी। उसी सीढ़ी बनाने की कला का नाम संन्यास है। एक तुमने बनाया है संसार। उसमें कहीं मूल में भूल हो गयी है। क्योंकि चाहते तो सुख हो, पाते दुख हो। आशा तो करते हो फूलों की, सिर्फ कांटे लगते हैं। कांटों पर कांटे लगते जाते हैं। जैसे-जैसे दिन बीतते, कांटे और बड़े होते

पुस्तकालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते, छाती में चुभते जाते। चाहे थे फूल, मिलते हैं शूल। सोचा था छाया मिलेगी शीतल, मिलती है दोपहर, दोपहर की तपती धूप, बरसती आग। आशा की थी आकाश-कुसुम झरेंगे, मगर झरते हैं केवल अंगारे।

तुम अपनी जिन्दगी ही देखो !

क्या सोचते हो, क्या मिलता है ? ठीक उल्टा मिलता है। चाहा सम्मान, मिलता अपमान। चाहे गीत, मिलती गालियां। कहीं मूल में ही कुछ भूल हो रही है। बीज तो तुम बो रहे हो नीम के और आशा कर रहे हो आम की। नीम के बीज से तो नीम ही पैदा होगी। कड़वाहट-कड़वाहट ही फैल जाएगी। माधुर्य का जन्म् नहीं हो सकता।

मूल से तू मौलि तक फिर रच नया सोपान, मन !

संन्यास का इतना ही अर्थ है कि अब हम फिर से गिरा ही दें इस मकान को, जो हमने बनाया। इसमें ही टीम-टाम करना, इसमें ही सहारे और लकड़ियां लगाना और टेकें लगाना, इसी में लीप-पोत करना, इसी में रंग बदल देना, इसी में थोड़ी सजावट कर लेना, इससे कुछ भी न होगा। एक नया ही जीवन का मंदिर बनाना है। मूल से ही आधार बदलने होंगे। बुनियाद के पत्थर ही बदलने होंगे। अभी बुनियाद के पत्थर हैं वासना के, विचार के, कामना के, कल्पना के; तब मूल में आधार रखना होगा ध्यान का। ध्यान की आधारशिला पर जो मंदिर बनता है, वह संन्यास है। और विचार की आधारशिला पर जो मकान बनता है, वह संसार है। कामना के पत्थरों से तुम जो दीवारें बनाते हो, वे तुम्हें ले डूबेंगी, कब्रें बन जाएंगी। करुणा से, काश, तुम अपनी दीवारें बना सको, तो तुम एक ऐसा मंदिर बनाओगे जो शाश्वत का है; जिसका फिर कोई अंत नहीं है।

वज्रकीलित कोकिला का कंठ यदि अमराइयों में,
वज्र को मत देख, बनकर बीज गल गराइयों में;

तुम्हें गलना सीखना होगा—अभी तुमने सिर्फ बचना सीखा है। कैसे बचते रहें ? लोग बस बचने में लगे हैं। सब तरफ से सुरक्षित हो जाएं, सब तरफ सुरक्षा की एक दीवार खड़ी कर लें—लोहे की हो तो और भी अच्छी, उसकी आड़ में छिप जाएं। तुमने सुरक्षा के मोह में जीवन गंवा दिया है। जीवन तो उनका है जो गलना जानते हैं—बीज की तरह गलना जानते हैं। क्योंकि बीज जब गलता है, तभी अंकुरित होता है।

वज्र को मत देख, बनकर बीज गल गराइयों में;
विसर्जन से मांग सर्जन का पुनः वरदान, मन !

और धन्यभागी हैं वे, जो विसर्जित होने को राजी हैं। क्योंकि जो अपने को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विसर्जित कर देता है, जो अपने को मिटा देता है, उस परम ऊर्जा में जो उसके सागर में बूंद की तरह लीन हो जाता है, उसके जीवन में बड़ी सृजनात्मकता पैदा होती है। उसके जीवन में बड़े काव्य का आविर्भाव होता है। वह फिर जो छुए, वही सोना हो जाता है। अभी तो तुम जो छूते हो, वही मिट्टी हो जाता है।

दूर हंसध्वनि गई, आई-गई यदि प्रतिध्वनि है,
छिन्न होकर गगन से यदि खिन्न पथराई अवनि है;
शून्य के अन्तःकरण में सुन अतल का गान, मन !

भजन का अर्थ :

शून्य के अन्तःकरण में सुन अतल का गान, मन !

भजन तुम्हें नहीं करना होता, भजन तुम्हें सुनना होता है। तुम तो शून्य होकर सिर्फ सुनने वाले रह जाओ और उठने लगेगा भजन। तुम्हारी ही गहराइयों से उठेगा एक संगीत और आच्छादित कर लेगा तुम्हें। तुम्हारे ही भीतर से उगेंगे फूल और तुम सुवास में डूब जाओगे।

शून्य के अन्तःकरण में सुन अतल का गान, मन !
अनसुनी रहती नहीं है अनसुनी आवाज़ कोई,
अलख सुनता है कहीं जब सिसकता है साज़ कोई;

और भजन तुम्हारा सूखा-सूखा हुआ तो व्यर्थ चला जाएगा। उसमें आर्द्रता चाहिए। उसमें प्रेम का गीलापन चाहिए। आंखों में प्रीति के, आनंद के अश्रु चाहिए। जब तुम्हारे गीले साज पर कोई भजन गाया जाएगा, तो जरूर सुना जाता है—अलख उसे सुनता है।

अलख सुनता है कहीं जब सिसकता है साज़ कोई;

तुम्हारा भजन सिसकी होना चाहिए। तुमने तो भजन को भी एक प्रदर्शन बना लिया है। मंदिर में जा कर, जोर-जोर से घंटा बजा कर—जैसे ओशो कोई बहरा हो ! पहले घंटा बजाओ, सोए ओशो को जगाओ ! जगाना खुद को है, जगा रहे हो ओशो को घंटा बजा-बजा कर ! और फिर जोर-जोर से चिल्ला कर भजन करो; ताकि पास-पड़ोस के लोग सुन लें कि तुम महान धार्मिक व्यक्ति हो ! ताकि तुमने जो चोरियां की हैं, बेईमानियां की हैं, धोखेधड़ियां की हैं, वे सब तुम्हारे भजन में छिप जाएं, भजन की आड़ में हो जाएं। मंदिर के घंटे की आवाज, भजन-पूजा में चढ़ाए गये फूल, अर्चन की धूप, इस सब धुएं में छिपा लेना चाहते हो तुम अपने को। यह सब धोखा है। मंदिरों में भजन नहीं होते। भजन तो होते हैं एकांत में, जहां हृदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिसकता है; जहां जोर-जोर रोते हो तुम। किसी को बताने की थोड़े ही बात है ! इसका कोई प्रदर्शन थोड़े ही करना है ! यह कोई अभिनय तो नहीं है ! यह कोई प्रदर्शनी तो नहीं है ! इसकी कोई नुमाइश तो नहीं सजानी है !

अलख सुनता है कहीं जब सिसकता है साज़ कोई;
हो न कुछ गुंजान में जब, साध फिर सुनसान, मन !

सुनसान को साधो। कहने को कुछ भी नहीं होता है भजन में। कहने को है क्या हमारे पास ? रो लें तो बहुत। शब्द क्या कहेंगे, आंसू ही कह सकते हैं। नृत्य कह सकता है। आंखें कह सकती हैं। सन्नाटा कह सकता है। चित्त का ठहरा हुआ प्रवाह कह सकता है। निस्तरंग भाव की दशा कह सकती है। और कैसे कहोगे ?

लेकिन लोगों ने तोतों की तरह भजन रट लिये हैं। हरे कृष्णा, हरे रामा। कहे जा रहे हैं यंत्रवत्। कहीं कोई भाव का तालमेल नहीं है। हृदय साथ ही नहीं है, खोपड़ी में ही आवाज गूंज रही है; इसलिए गीली भी नहीं है, रूखी-सूखी है।

जीवन है दिन चार, भजन करि लीजिये।
तन मन धन सब वारि संत पर दीजिये।।

परमात्मा पर तो तन-मन-धन वारने को बहुत लोग तैयार हो जाते हैं। क्योंकि परमात्मा न तो दिखाई पड़ता, न डर है उससे कुछ। तो लोग तैयार हैं, परमात्मा पर तो सब वारने को तैयार हैं। लोग बड़े कुशल हैं, बड़े चालबाज हैं। परमात्मा तो कहीं मिलेगा नहीं कि तुमसे कहे कि कुछ दो; कि लाओ, तुमने कहा था कि सब वारने को तैयार हूं; दो तन, दो धन, दो मन, परमात्मा तो कहीं कहेगा नहीं; परमात्मा तो निराकार है, वह तो बोलेगा नहीं; सो ठीक सुविधा है, परमात्मा पर सब दान करने को लोग तैयार हैं। लोग कहते हैं हमने तो ओशो के चरणों में अपने को छोड़ दिया है। तुम जैसे हो वैसे-के-वैसे रहते हो।

लोग ऊंचे-ऊंचे शब्द, बड़े-बड़े शब्दों का उपयोग करके खूब चालबाजियां करते हैं। मनुष्य को प्रेम नहीं करेंगे, 'मनुष्यता' को प्रेम करेंगे। 'मनुष्यता' कहीं मिलती है ? मनुष्यता से डर क्या है ? जब भी कहीं कोई मिलता है, मनुष्य मिलता है। तुमने कभी 'मनुष्यता' के दर्शन किये ? लेकिन अगर लोगों से कहो कि मनुष्य को प्रेम करो, तो अड़चन होती है, क्योंकि मनुष्य को प्रेम करने का मतलब है : आकार, सगुण। उससे तो झंझट पैदा होती है। मनुष्य को प्रेम करना बहुत कठिन। अपनी पत्नी को प्रेम करना कठिन, अपने पति को प्रेम करना कठिन, अपने बच्चों को प्रेम करना कठिन। कोशिश करते हैं लोग; लेकिन सब कोशिशें हार जाती हैं। 'मनुष्यता' को प्रेम करना बहुत आसान है। कोई झंझट ही नहीं है। 'मनुष्यता' कहीं मिलती ही नहीं है। इसलिए लोग ऊंचे-ऊंचे शब्दों की आड़ में बेईमानियां करते हैं। 'राष्ट्र'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को प्रेम करते हैं। अब 'राष्ट्र' कहां है ? 'भारतमाता' को प्रेम करते हैं। अपनी माता को प्रेम नहीं कर पाते ! क्योंकि अपनी माता झंझट खड़ी करती है। 'भारतमाता', बिलकुल ठीक।

तसवीरें बनी थीं, अभी भी कुछ घरों में लटकी हैं। भारतमाता बैठी हैं, सिंह के ऊपर, तिरंगा झंडा लिये ! लगता है किसी सर्कस में हैं या क्या मामला है ? लेकिन 'भारतमाता' को प्रेम किया जा सकता है। एकाध 'माता' को प्रेम करो, तब तुम्हें वह छठी का दूध याद दिला देगी ! लेकिन 'भारतमाता' से कुछ लेना-देना नहीं है, थोथे शब्द हैं—'मनुष्यता', 'भारतमाता', 'भगवान' !

पलटू ठीक कहते हैं; सीधे आदमी हैं, साफ आदमी हैं, गर्दन से पकड़ लेते हैं—

तन मन धन, सब वारि संत पर दीजिये।।

अगर भगवान से कुछ भी संबंध जोड़ना हो, तो कोई सगुण रूप में उसे पकड़ना होगा। वहीं कसौटी होगी।

संत परमात्मा का साकार रूप है। संत का अर्थ है : जहां सत्य ने देह धरी। जहां सत्य छुआ जा सकता है, देखा जा सकता है, सुना जा सकता है। जहां सत्य के साथ संवाद हो सकता है। जहां सत्य के साथ संबंध हो सकता है।

तन मन धन, सब वारि संत पर दीजिये।।

तो ही समझना कि तुम्हारे भजन में कुछ अर्थ है; अन्यथा थोथी बकवास है। और बचाना कुछ भी मत। और मजा यह है कि संत तुमसे कुछ भी नहीं चाहता—न तुम्हारा तन चाहता है, न मन चाहता है, न धन चाहता है। कुछ उसे चाहिए नहीं। तुम्हारे पास उसे देने को है भी क्या ? संत तो सब कुछ तुम्हें देना चाहता है। मगर वह दे केवल उन्हीं को सकता है, जो सब देने को तैयार हैं। यद्यपि संत को लेने को कुछ भी नहीं है तुम्हारे पास। क्या है तुम्हारे पास जो तुम उसे दोगे ? लेकिन तुम्हारे देने की तैयारी !

गुर्जिएफ के जीवन में उल्लेख है...गुर्जिएफ इस सदी के बड़े सद्गुरुओं में एक। और इस सदी के ही क्यों, सारी सदियों के कुछ बड़े सद्गुरुओं में एक था। उसके अपने अनूठे ढंग थे।

एक बहुत बड़े धनपति की पत्नी उसकी शिष्या हो गयी। औपचारिक रूप से ही उसने कहा कि सब आपके चरणों में चढ़ाती हूं। गुर्जिएफ ने कहा, सोच ले ! सब ? थोड़ी डरी और झिझकी, लेकिन अब कह चुकी थी, तो उसने कहा : हां, सब। तो गुर्जिएफ ने कहा कि जितने हीरे-जवाहरात, जितने मोती-माणिक्य तेरे पास हों, सबकी पोटली बांध कर ले आ ! अब बहुत घबड़ाई ! मामला ऐसा हो जाएगा, यह नहीं सोचा था—यह तो औपचारिकता से कहा था। यह तो मामला ऐसा हो गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे मेहमान तुम्हारे घर में आए और आप कहें : आइए, आइए, आपका ही घर है ! और फिर वह जम कर ही रह जाए। वह कहे, तुम्हीं ने तो कहा था : आपका ही घर है ! सब आपका है ! औपचारिक शिष्टाचार की बात उसने कही थी कि सब आपके चरणों में समर्पित है, इसका कोई मतलब यह नहीं था कि समर्पित है। लेकिन गुर्जिएफ ने तो कहा कि ठीक !

बड़ी बेचैन, रात भर सो न सकी। पास में जो महिला आश्रम में थी, उसने पूछा कि सो नहीं रही हो, बात क्या है ! तो उसने अपनी दुख-कथा कही कि यह मामला तो बहुत महंगा हो गया। यह तो करोड़ों के हीरे-जवाहरात मेरे पास हैं। यह मैं कैसे दे दूं ? अभी इस आदमी को मैं ठीक से जानती भी नहीं, नयी-नयी आयी हूं—तुम तो यहां वर्षों से हो, तुम्हारा क्या ख्याल है ? उसने कहा, तुम बिलकुल फिक्र मत करो। जब मुझसे कहा था कि सब दे दो, तो मेरे पास जो भी था—मेरे पास करोड़ों के तो नहीं थे, मगर कोई लाख-दो लाख के गहने मेरे पास भी थे—मैंने सब पोटली बांध कर दे दी थी। उस धनी महिला ने पूछा, फिर क्या हुआ ? उसने कहा, फिर यह हुआ कि दूसरे दिन सुबह गुर्जिएफ ने वह मुझे वापिस कर दिया। तो उसने कहा, अरे ! निश्िंचत हुई।

उसने सब बांधी पोटली, जाकर गुर्जिएफ को उसी रात सब दे आयी—करोड़ों रुपये के जो भी साज-सामान उसके पास था। दूसरे दिन सुबह रास्ता देखा कि वह वापस लौटे, वह वापस नहीं लौटा। तीसरे दिन, चौथे दिन,...अब वह घबड़ाने लगी। उसने फिर पड़ोस की महिला से कहा कि भई, कितनी देर लगेगी ? उसने कहा, मैं नहीं जानती; मुझे तो दूसरे दिन वापस मिल गया था।

आखिर उसने जाकर गुर्जिएफ से पूछा। गुर्जिएफ खूब खिलखिला कर हंसने लगा और उसने कहा : तेरा वापस नहीं लौटेगा। उसका वापस लौटा था, क्योंकि उसने सच में दिया था। तूने तो दिया ही नहीं, वापस क्या ख़ाक ! वापस तो तब लौटे जब तू दे ! अभी देना ही नहीं हुआ है, तो मैं वापस भी क्या करूं ? उसने दिया था। वापस की कोई आकांक्षा से नहीं दिया था। दिया ही था, समग्र मन से दिया था। सो मुझे लौटा देना पड़ा। करता भी क्या ? तूने तो अभी दिया ही नहीं है—अभी मुझे मिला नहीं ? अब तो वह महिला और घबड़ाई कि यह तो हद हो गयी ! मैं दे भी गयी और यह आदमी कह रहा है कि मिला भी नहीं; अभी तो मिला भी कहां, वापस मैं क्या लौटाऊं ?

लेकिन गुर्जिएफ ठीक कह रहा है।

गुरु को अगर तुम दे सके, तो सब वापस लौट जाता है—शायद हजार गुना होकर वापस लौट जाता है। शायद देने की, लेने की जरूरत ही नहीं पड़ती, भाव की ही बात पर्याप्त हो जाती है। मगर बेईमानी नहीं चल सकती।

गुर्जिएफ ने लौटा दिया उसका सारा धन और उससे कहा : दरवाजे के बाहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जा। यह स्थान तेरे लिए नहीं। यह कोई सौदा नहीं है। यह कोई व्यवसाय नहीं है। यहां हम किसी आत्मिक क्रांति में संलग्न हैं। फिर तो वह बहुत पछताई, बहुत कहा कि ले लें। गुर्जिएफ़ ने कहा : अभी नहीं, अभी तू जा। अभी भी तू कह रही है कि ले लें, इसी आशा में कि वापस लौटाऊंगा। जिस दिन वापस लौटाने की कोई भी आकांक्षा भीतर न रह जाए, वापस पाने की कोई भी भावना न रह जाए, उस दिन आना, उस दिन देखूंगा। और पक्का नहीं कहता कि लौटाऊंगा। वह महिला फिर कभी दोबारा नहीं गयी।

तन मन धन, सब वारि संत पर दीजिए।।

धूप है ज़्यादा कम है छाया
आख़िर यह मौसम भी आया !

टूट चुका है नींद का जादू
कोई सपना साथ नहीं है
कहने को तो है बहुतेरा
वैसे कोई बात नहीं है।
सारी रात रहा खुलता जो
सुबह वही घूंघट शरमाया
धुंधली हैं तारों की गलियां
पाप के रस्ते चमकीले हैं
कांटे हैं वैसे के वैसे
फूलों के चेहरे पीले हैं
खुशबू भटके मारी-मारी
मधुबन का हर अंग लजाया !
सांझ के दरवाजे तक हमको
छोड़ गई हैं दिन की राहें
बस्ती के ऊपर फैली हैं
सांपों जैसी काली बांहें
मौत के रंग से ज़्यादा गहरा
उजले इनसानों का साया !
गीत के सौदे करने वाले
दर्द की कीमत को क्या जानें
कौन उन्हें जाकर समझाए
बिकते नहीं कभी दीवाने !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंधकार के रंगमहल में
कब कोई सूरज सो पाया !
तेज बहुत हैं वक़्त के पहिये
अब रुकने की बात करें क्या !
राह में क्या कुछ टूटा-फूटा
सोच इसे हम आंख भरें क्या !
आओ अब सामान संभालें
देर हुई यह शहर पराया !

परदेश में हैं हम।

देर हुई यह शहर पराया !
आओ अब सामान संभालें
जीवन है दिन चार, भजन करि लीजिये,
तन मन धन, सब वारि संत पर दीजिये।।
संतहिं से सब होइ, जो चाहै सो करैं।
अरे हां, पलटू संग लगे भगवान्, संत से वे डरैं।।

कैसा अद्‌भुत वचन कहा है ! कहा कि—

अरे हां, पलटू संग लगे भगवान, संत से वे डरैं।।

तुमने तो सुना है : भगवान से डरो; ईश्वर भीरु हो जाओ; लेकिन पलटू कहते हैं कि हमने यह देखा कि संतों से हमने भगवान को डरते देखा। संतों के पीछे हमने भगवान को लगे देखा। जैसे छाया चलती है आदमी के पीछे, ऐसे भगवान संत के पीछे चलते हैं। भगवान संत की छाया हैं। या यूं कहो कि भगवान का ही साकार रूप संत है। दोनों बातें एक ही हैं। संत साकार है, उसी के आसपास निराकार आभा है।

अरे हां, पलटू संग लगे भगवान, संत से वे डरैं।।

इसलिए संत के चरणों में सब कुछ हो सकता है। मगर उसको ही जो गलने को तैयार हो, विसर्जित होने को तैयार हो। जो समग्र भांति अपने को समर्पित कर दे, अर्पित कर दे।

ऋद्धि सिद्धि से बैर, संत दुरियावते।

और ध्यान रखना, संतों की पहचान कैसे करोगे ? मदारियों के चक्कर में मत पड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाना ! क्योंकि संत की पहली पहचान है : 'ऋद्धि सिद्धि से बैर'। संत को न तो सिद्धियों में कोई रस है, न ऋद्धियों में कोई रस है। संत कोई तावीज नहीं निकालते आकाश से और विभूति नहीं निकालते और स्विस मेड घड़ियां नहीं निकालते।

ऋद्धि सिद्धि से बैर, संत दुरियावते।

ऋद्धि-सिद्धि उनके द्वार भी आएं तो संत उन्हें ठुकरा देते हैं, भगा देते हैं कि भागो यहां से ! यहां क्या जरूरत है ?

सूफी कहानी है—

एक फकीर परम ध्यान को उपलब्ध हो गया। फरिश्ता आकाश से आया और कहा : तू मांग ले जो भी वरदान मांगना हो। परमात्मा तुझ पर प्रसन्न है। उस फकीर ने कहा, रास्ता पकड़ो ! जब मांग थी, तुम कहां थे ? अब मांग नहीं, तब आए ! अब तुम्हारा आना व्यर्थ है। भागो यहां से ! फिजूल समय खराब अपना और मेरा न करो। फरिश्ता तो बहुत हैरान हुआ, उसने कहा, मैं बहुतों के पास गया हूं, मगर इस तरह कहीं नहीं दुरियाया गया। मैंने कोई तुम्हारा अपमान कर दिया ? संत ने कहा, अपमान नहीं तो और क्या ! तुम मुझे भिखमंगा समझे हो ! मालिक का मालिक मुझे मिल गया, अब क्या तुम आए हो यहां ? क्या तुम दे सकते हो ? तुम्हारे पास क्या है देने को ? पर उस फरिश्ते ने कहा : भगवान ने ही मुझे भेजा है; और इस तरह लौटाने में भगवान का अपमान होगा। कुछ मांग लो ! कुछ ऐसी बात मांग लो जिसकी तुम्हें तो जरूरत न हो, लेकिन औरों को जरूरत हो। संत ने बहुत सोचा लेकिन उसने कहा, मुझे कुछ ऐसा समझ में नहीं आता जो मांगा जा सके।

फरिश्ते ने खुद सुझाव दिया कि तुम ऐसा क्यों नहीं मांग लेते कि तुम बीमार को छुओ, तो बीमार ठीक हो जाए। अंधे की आंख पर हाथ रखो तो अंधा ठीक हो जाए। मुर्दे को छू दो तो जी जाए। इससे लोगों की सेवा होगी। करुणा बहेगी तुमसे। लोगों में धर्म का सद्भाव जगेगा, परमात्मा की प्रीति उमगेगी। संत ने कहा, यह बात तो ठीक लगती है; पर इसमें एक खतरा है, इसमें मेरी अकड़ पैदा हो सकती है कि मैं किसी अंधे की आंख छुऊं और वह ठीक हो जाए, तो मेरे भीतर अकड़ खड़ी होगी—अहाह, देखो मैंने इसकी आंख ठीक कर दी ! और मुर्दे को जिला दिया तो मेरे भीतर कोई कहेगा कि देखा, है कोई और जो मुर्दे को जिला दे ? फरिश्ता माना ही नहीं तो संत ने कहा, फिर एक काम करो, तुम मेरी छाया को वरदान दे दो—मैं तो वरदान नहीं चाहता ! मेरी छाया अगर मुर्दे पर पड़ जाए, तो जी जाए। मुझे पता नहीं चलना चाहिए। मेरी छाया अगर सूखे वृक्ष पर पड़ जाए तो वह हरा हो जाए; मुझे पता नहीं चलना चाहिए।

और कहते हैं, तबसे वह संत भागता रहता था। लोग उससे पूछते कि रुकते क्यों नहीं ? तो वह कहता : कहीं छाया का मुझे पता न चल जाए कि छाया क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रही है। तो वह भागता ही रहता; ताकि छाया जो भी करे, करे। मुर्दे जी गये, सूखे वृक्षों में फूल-फल लग गये, अंधे ठीक हो गये, बीमार स्वस्थ हुए, लेकिन उस फकीर को कभी पता नहीं चला, क्योंकि वह भागता ही रहता। वह रुकता ही नहीं देखने के लिए कि छाया क्या कर रही है।

ऋद्धि सिद्धि से बैर, संत दुरियावते।
इन्द्रासन बैकुण्ठ बिष्ठा सम जानते।।

उन्हें तो इन्द्र का आसन भी देते हो, उन्हें बैकुण्ठ में भी जगह मिलती हो, तो भी उनके लिए मल-मूत्र से ज्यादा नहीं है।

करते अबिरल भक्ति, प्यास हरिनाम की।

उनका तो सारा ध्यान बस एक बात में लगा है...कहां का बैकुण्ठ ! कहां का इन्द्रासन !...अविरल भक्ति। एक अबिरल धारा बह रही है उनके भीतर तो आनंद की, उत्सव की। वहां तो एक नृत्य-गान चल रहा है भीतर। बैकुण्ठ तरसता होगा उनके भीतर आने को, वे क्यों बैकुण्ठ के पास जानें को तरसें ? इन्द्रासन तड़पता होगा कि उनके चरण छू ले, वे क्यों इन्द्रासन की फिक्र करें ? यहां तो बस एक ही धुन है, एक ही स्वर है—हरिनाम का। एक ही प्यास है।

अरे हां, पलटू संत न चाहें मुक्ति तुच्छ केहि काम की।।

यहां भक्तों ने ध्यानियों को भी मात दे दी है। ध्यानी की आकांक्षा मोक्ष की है—मुक्त हो जाऊं, सब बंधनों से मुक्त हो जाऊं। भक्त कहता है, अगर बंधन तेरे हैं, तो मैं इसकी भी क्या फिक्र करूं ? इन तुच्छ बंधनों से क्या मुक्त होना ! अगर तूने दिये हैं, तो राजी ! अगर तूने दिये हैं तो प्यारे हैं। अगर तूने ही दिये हैं तो तेरी मर्जी पूरी हो ! मैं तेरे बंधनों से राजी हूं। तू जहां रखे राजी हूं। तुझसे अन्यथा मेरी कोई चाह नहीं। मेरे लिए मुक्ति भी तुच्छ है। मेरी मांगी मुक्ति तुच्छ है, तेरे दिये हुए बंधन भी महान् हैं।

अरे हां, पलटू संत न चाहें मुक्ति तुच्छ केहि काम की।।
आगम कहैं न संत,...

प्यारे वचन हैं ! खूब-खूब ध्यान करना इन वचनों पर। गहरे इन्हें उतर जाने देना। इनका रस तुम्हारी पोर-पोर में समा जाए। 'आगम कहैं न संत...', संतों को शास्त्रों से कुछ लेना-देना नहीं। आगम-निगम सब व्यर्थ हैं उनके लिए। वेद, कुरान, बाइबिल उन्हें कुछ सार नहीं रखते। इनमें क्या पड़ा है ? ये तो नक्शे हैं। और नक्शा असलियत नहीं है। जैसे भारत का नक्शा भारत नहीं है और हिमालय की तसवीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय नहीं है। ये सारे शास्त्र तो नक्शे हैं। संत को तो सत्य मिल गया, अब नक्शों की कौन फिक्र करे !

आगम कहैं न संत, भड़ेरिया कहत हैं।

आगम तो जो भाट हैं, जो स्तुति कर-कर के लोगों का शोषण करते हैं, जो तुम्हारे अतीत का गुणगान करके तुम्हारे अहंकार को भरते हैं—भड़ेरिया, भड्डरी, पंडित, भट्टारक, भाट—उनका धंधा है यह कि वे आगम-निगम की बात करें। संत तो जो बोलते हैं, वह शास्त्र है। नहीं बोलते, तो शास्त्र, बोलते, तो शास्त्र, उठते, तो शास्त्र, बैठते, तो शास्त्र।

संत न औषधि देत, बैद यह करत हैं।।

और संत कोई औषधि नहीं देते फिरते ! वह धंधा वैद्यों का है। मगर इस देश में यह भ्रांति खूब फैली है। यहां लोग संतों के पास जाते हैं, क्योंकि बीमारी है। कोई संतों के पास जाता है, क्योंकि कोई नौकरी नहीं लग रही है।

अभी परसों ही एक युवक ने मुझसे आकर कहा, बस इतनी ही प्रार्थना है, दो चीजें चाहिए—भौतिक समृद्धि भी मिले और आध्यात्मिक समृद्धि भी मिले। और भी लोग मौजूद थे, इसलिए मैंने उससे कुछ कहा नहीं; नहीं तो कहना मैं चाहता था कि तुम्हारी शक्ल देख कर ऐसा लगता है कि इन दोनों में से कुछ भी नहीं मिलने वाला।

और अगर लोग मौजूद न होते तो मैं उससे कहना चाहता, अच्छा तू दो में से एक चुन ले, एक का वरदान मैं देता हूं। तो पक्का था कि वह कहता : भौतिक समृद्धि। आध्यात्मिक समृद्धि तो उसने सिर्फ मुझे प्रसन्न करने के लिए जोड़ दी थी। उसकी शक्ल से ही मालूम पड़ रहा था कि भौतिक समृद्धि और आध्यात्मिक समृद्धि दोनों मिले ! अगर मैं जिद करता कि दो में से एक चुन, तो वह कहता, पहले भौतिक मिल जाए, फिर आध्यात्मिक पीछे देख लेंगे। वह उसकी शक्ल से ही टपक रही थी बात। उसकी शक्ल पर ही वह घिनौनापन था जो रुपये-पैसे की पकड़ वालों के चेहरे पर होता है। जैसे घिसे-पिटे रुपये हो जाते हैं न—नोट भी चलते-चलते जैसे गंदे हो जाते हैं ! वैसे ही शक्लें हो जाती हैं नोट से प्रेम करने वाले लोगों की। घिसे-पिटे रुपयों की तरह हो जाते हैं वे। हजार हाथ से जाते हैं। इससे ज्यादा गंदगी और कोई चीज में होती ही नहीं जितनी रुपये-पैसे में होती है।

पता नहीं चिकित्सक इस संबंध में कुछ क्यों नहीं करते ? क्योंकि मेरी मान्यता है कि नोटों में जितनी संक्रामक बीमारियां फैलाने की क्षमता होती होगी और किसी चीज में नहीं हो सकती। क्योंकि टी.बी. वाला लिए फिर रहा है, कैंसर वाला लिए फिर रहा है, फ्लू है और लोग लिए फिर रहे हैं, बुखार चढ़ा है और नोट खीसे में है, खांस रहे हैं, खंखार रहे हैं और नोट ही नोट भरे हैं। और ये नोट चल रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका नाम ही अंग्रेजी में : 'करेन्सी'। 'करेन्सी' मतलब जो चलती है, चलती रहे ! इनका चलन हो रहा है। एक हाथ से दूसरे हाथ, दूसरे हाथ से तीसरे हाथ...ये कितने हाथों में जा रहे हैं ! नोट से ज्यादा गंदी चीज इस जमीन पर खोजनी मुश्किल है।

और जो नोटों के प्रेम में पड़ जाता है, उसका चेहरा भी उतना ही गंदा हो जाता है। उसके चेहरे पर फूलों की ताजगी नहीं रह जाती, नोटों की गंदगी हो जाती है। अगर फूल दुनिया में सबसे ताजे हैं, तो नोट दुनिया में सबसे गंदे हैं। फूलों को प्रेम करने वाले के चेहरे पर फूलों का कुछ तो भाव होता है, उसकी आंखों में कुछ तो कमल खिलते हैं !

लेकिन इस देश में यह हो गया है पागलपन। लोग समझते हैं वे आध्यात्मिक हैं। मंदिर जाते, तीर्थ जाते, तथाकथित संतों के पास जाते, मगर उनके इरादे बड़े भौतिक हैं। भारतीयों को कहो कि तुम बहुत भौतिक हो, तो उनको बहुत नाराजगी होती है। मगर मजबूरी है। तुम्हारा तथाकथित धर्म बस तथाकथित है। तुम्हारी मांग बताती है कि तुम्हारी असलियत क्या है। मेरे पास भी लोग आ जाते हैं...इतनी रुकावटें मैंने खड़ी कर रखी हैं—इन्हीं लोगों के लिए कि इस तरह के लोगों को मैं नहीं चाहता; लेकिन मेरे पास लोग आ जाते हैं। किसी को बीमारी है, किसी को नौकरी नहीं मिल रही है, किसी का धंधा ठीक नहीं चल रहा है !

पलटू कहते हैं :

आगम कहै न संत, भड़ेरिया कहत हैं।
संत न औषधि देत, वैद यह करत हैं।।
झार फूंक ताबीज ओझा को काम है।
अरे हां, पलटू संत रहित परपंच राम को नाम है।।

पलटू कहते हैं, अगर संत न मौजूद हो तो तुम राम की कितनी ही गुहार लगाओ, सब प्रपंच है, सब व्यर्थ है। राम का स्मरण सार्थक तभी है, जब राम को जानने वाला मौजूद हो तुम्हारे साथ। राम जिसके भीतर घटा हो, उसकी उपस्थिति में तुम्हारे भीतर भी कुछ घट सकता है अन्यथा नहीं।

इतराकर यों राजहंस से कहता आज उलूक
सुन बेटा ! मैं करता हरदम बात खरी दो टूक
राजहवेली में, महलों में मेरा नित्य निवास
ताल-तलैया में करता तू संबुक आज तलाश
कभी किसी युग में मुक्ताहल तूने चुगे जरूर
अब तो मोमी मोती के भी दाम बढ़े भरपूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तू जिसका वाहन है मैं करता उसका व्यापार
सभी मुद्रणालय मेरे, मेरे सब ग्रंथागार
मेरे हाथ बिके वाणी के साधक सभी समान
नत मेरी बोली के आगे सभी गुणी मतिमान
मैं हूं जिसका वाहन उसका आज विश्व पर राज
नाच रहा उसकी इंगित पर सारा सुधी समाज
कौओं-बगुलों का दरबारी तू भी बना निदान
देख रहा क्यों मान-सरोवर का सपना नादान !
बन जा मेरी निपुण स्वामिनी का अब तू भी भाट
पोखर में सड़ने से अच्छा गा उसका ही ठाट
वही गा रहे आज गिरा की वाणी के सब तार
सुन बेटा ! मेरी देवी का जयजयकार अपार।

उल्लू हंसों को समझा रहे हैं !

इतराकर यों राजहंस से कहता आज उलूक
सुन बेटा ! मैं करता हरदम बात खरी दो टूक

पंडित-पुजारी अंधे लोग हैं; जिनको दिन में भी नहीं सूझता ऐसे उलूक हैं। लेकिन वे सारी दुनिया को समझा रहे हैं कि हम जो कर रहे हैं वही तुम भी करो। जो भजन हम करते हैं, जो हवन हम करते हैं, वही तुम भी करो। इसी से मिलेगी ऋद्धि, इसी से मिलेगी सिद्धि। हम जो शास्त्र पढ़ते हैं, तुम भी कंठस्थ करो। हम जिस ज्ञान की देवी के भक्त हैं, तुम भी हो जाओ। हमारे जयजयकार में तुम भी सम्मिलित हो जाओ; मत सपने देखो मानसवरोवर के !

लेकिन तुम्हारे प्राण उल्लुओं की इन बातों से तृप्त नहीं हो सकते। प्राण तो मानसरोवर का सपना ही देखेंगे। और सपना देखते रहना मानसरोवर का। और अगर कभी कोई मानसरोवर का जानने वाला मिल जाए तो पकड़ लेना उसका संग-साथ। उसके संग-साथ होते ही तुम्हारी यात्रा भी चल पड़ेगी परमात्मा की ओर।

अरे हां, पलटू संत रहित परपंच राम को नाम है।

बिना संत के, बिना किसी पथप्रदर्शक के जो हो आया हो मानसरोवर तक तुम पहुंच न सकोगे। रास्ते में भटकाने वाले बहुत हैं; अटकाने वाले बहुत हैं। क्योंकि तुम भटको और अटको, इसमें लोगों का स्वार्थ सिद्ध होता है। तुम पहुंचो, इसमें किसी का स्वार्थ सिद्ध नहीं होता। तुम्हें तो वही पहुंचा सकता है जिसका अपना कोई स्वार्थ ही नहीं रहा—स्व ही नहीं रहा, तो स्वार्थ क्या रहेगा !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़ा-सा सम्मान मिला—पागल हो गए!
थोड़ा-सा धन मिला—बेकाबू हो चले !
थोड़ा-सा ज्ञान मिला—उपदेश की भाषा सीख ली !
थोड़ा-सा यश मिला—दुनिया पर हंसने लगे !
थोड़ा-सा रूप मिला—दर्पण ही तोड़ डाला !
थोड़ा-सा अधिकार मिला—दूसरों को तबाह कर दिया !

इस प्रकार
तमाम उम्र चलनी से पानी भरते रहे !
अपनी समझ से
बहुत बड़ा काम करते रहे ! !

बस पंडितों की जिन्दगी चलनी से पानी भरने जैसी है। भरते तो बहुत, मेहनत तो बहुत करते, लेकिन चलनी में कभी पानी भर नहीं पाता। और बुद्धि कभी बुद्धिमान् नहीं हो पाती। बुद्धिमत्ता तो हृदय में घटती है। और हृदय में जाने का द्वार तर्क नहीं, शास्त्र नहीं, प्रेम है, भजन है।

हरिजन हरि हैं एक सबद के सार में।

अगर तुम्हारे भीतर वह ध्वनि गूंजने लगे, शब्द का सार गूंजने लगे; अगर तुम्हारे भीतर ओंकार का नाद तुम्हें सुनाई पड़ जाए—जो कि गूंज तो रहा है लेकिन तुम्हारे विचारों के शोरगुल के कारण सुनाई नहीं पड़ रहा है; जो अहर्निश तुम्हारे भीतर हो रहा है, लेकिन बाजार भरा है तुम्हारे मस्तिष्क में और उस बाजार को तुम बढ़ाते चले जाते हो। गीता गूंज रही है, वेद गूंज रहे हैं, कुरान-बाइबिल गूंज रही है—और मस्तिष्क के नीचे हृदय में ओंकार का नाद दबा पड़ा है। हटाओ शास्त्रों को, हटाओ शब्दों को, तो शब्दों का सार, सारों का सार तुम्हें उपलब्ध हो जाए।

हरिजन हरि हैं एक...

उस दिन तुम जानोगे कि संत में और परमात्मा में भेद नहीं है।

हरिजन हरि हैं एक सबद के सार में।

जब तुम अपने भीतर ओंकार का नाद सुनोगे, तो तुम चकित हो जाओगे कि जो परमात्मा में है सागर की तरह, वही संत में है बूंद की तरह। बूंद और सागर एक हैं।

जो चाहैं सो करैं संत दरबार में।।

जिसको बौद्ध-परंपरा में बुद्ध-ऊर्जा का क्षेत्र कहा है, उसको ही फकीरों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'संत-दरबार' कहा है। संत का भी एक दरबार है, उसकी भी एक अपनी दुनिया है। सम्राटों के दरबार में क्या रखा है ? सम्राटों के दरबार में तो क्षुद्र का लेन-देन है, व्यवसाय है। दरबार तो फकीरों के होते हैं ! क्यों ? क्योंकि वहां असली संपदा है। असली साम्राज्य है। जो एक बार मिल जाए तो कभी खोता नहीं। चोर जिसे लूट नहीं सकते, आग जिसे जला नहीं सकती, मृत्यु जिसे छीन नहीं सकती।

जो चाहैं सो करैं संत दरबार में।।
तुरत मिलावैं नाम एक ही बात में।

तुम्हारी तैयारी भर हो, तो तुरत मिलावै नाम एक ही बात में।

अरे हां, पलटू लाली मेंहदी बीच छिपी है पात में।।

जैसे हरे पत्ते में मेंहदी के लाली छिपी है—दिखाई तो नहीं पड़ती; थोड़ा पीसो, प्रकट होने लगती है—ऐसे ही प्रत्येक व्यक्ति में हरि छिपा हुआ है। थोड़ा पीसो !

संत के दरबार में तुम मेंहदी के पत्ते हो। तुमको पीसता है। तुम्हारे अहंकार को गलाता है। तुम्हारे कूड़े-कचरे को जलाता है। तुम्हें निखारता है, कुंदन बनाता है। और तुम्हारे भीतर छिपी हुई लाली प्रगट होनी शुरू हो जाती है। मगर पिसोगे तो ही।

अरे हां, पलटू लाली मेंहदी बीच छिपी है पात में।।

परमात्मा कहीं दूर नहीं है, तुम्हारे भीतर छिपा है, तुम्हारे पत्ते में छिपा है। पत्ते-पत्ते में छिपा है। पत्ते-पत्ते पर उसका हस्ताक्षर है।

करते बट्टा ब्याज कसब है जगत का।

लेकिन पंडित-पुरोहित तो धंधे में हैं। एक व्यवसाय है जो धर्म के नाम पर चल रहा है। और धर्म के नाम पर जितनी आसानी से चल सकता है, किसी और चीज के नाम पर नहीं चल सकता। धर्म के नाम पर जितना धोखा संभव है, किसी और चीज के नाम पर संभव नहीं है। क्योंकि धर्म अदृश्य का व्यवसाय है। कुछ दिखाई भी नहीं पड़ता, कुछ पकड़ में भी नहीं आता; तराजू में कुछ है भी या नहीं, यह भी समझ में नहीं आता, तराजू खाली भी हो सकता है—और तौले जाए ! और तुम सोचो कि तुम्हारी झोली भर रही है।

करते बट्टा ब्याज कसब है जगत का।
माया में हैं लीन, बहाना भगति का।।
कहौं तनिक नहिं छुई गया बैराग है।
अरे हां, पलटू जनमें पूत कपूत लगाया दाग है।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म के धंधे से थोड़ा जागो ! धंधे का अर्थ है : जिन्होंने जाना नहीं, वे दूसरों को जना रहे हैं। जिन्हें मिला नहीं, वे दूसरों को मिलवा रहे हैं। जिनके पास नहीं है, वे केवल उधार शास्त्रों के आधार पर औरों को समझा रहे हैं।

स्वामी राम अमरीका से वापस लौटे।...इस सदी में भारत ने जो बहुमूल्य रत्न पैदा किये, उनमें एक हैं स्वामी राम...अमरीका में बहुत सम्मान मिला उन्हें। लोग उनके पीछे पागल थे। पागल होने जैसे वे आदमी थे। जैसे भौंरे दीवाने हो जाएं फूलों के पास, कि परवाने दीवाने हो जाएं शमा के आसपास, ऐसे राम के आसपास लोग दीवाने हो जाते थे। बात थी कुछ, गहरी बात थी कुछ, रस था कुछ, कि जिनके पास थोड़ी भी हृदय की क्षमता थी, उनकी हृदयतंत्री बज उठती थी।

फिर राम भारत वापस लौटे तो उन्होंने सोचा कि पश्चिम में इतने लोगों ने रस लिया, तो सबसे पहले भारत में कहां यात्रा शुरू करूं ? स्वभावतः सोचा, वाराणसी। और वाराणसी में जो हुआ, राम चौंक गये। वाराणसी में राम का जो स्वागत हुआ, उसकी उन्होंने कभी कल्पना भी न की थी। बोलने खड़े हुए, पांच-सात मिनट ही बोले होंगे कि एक पंडित खड़ा हो गया—महापंडित काशी का—और उसने कहा, रुकिये। संस्कृत आती है ?...राम को संस्कृत नहीं आती थी। पंजाब में पैदा हुए, लाहौर में पढ़े। फारसी आती थी, उर्दू आती थी, संस्कृत नहीं आती थी।...वह पंडित खिलखिला कर हंसने लगा और सारी सभा भी हंसने लगी। और उस पंडित ने कहा, संस्कृत नहीं आती और ब्रह्मज्ञान छांट रहे हो ! बिना संस्कृत के ब्रह्मज्ञान कैसा ! पहले संस्कृत सीखो ! पहले व्याकरण सीखो ! फिर ब्रह्मज्ञान की बात करना।

राम को तो इतनी हैरानी हुई कि उन्होंने यात्रा का ख्याल ही छोड़ दिया भारत में। वे तो हिमालय चले गये। न केवल हिमालय चले गये बल्कि तुम जानकर हैरान होओगे, उन्होंने गैरिक वस्त्र भी छोड़ दिये। उन्होंने साधारण वस्त्र पहन लिये। इस देश में अब क्या मूल्य है गैरिक वस्त्रों का—उन्होंने सोचा ! जहां संस्कृत जानना ब्रह्म को जानने का पर्यायवाची हो गया हो, अब इस देश में क्या संन्यासी ! !

मगर यह सदा होता रहा है। लोग व्यर्थ की बातों को मूल्य देने लगते हैं—भाषा, व्याकरण, तर्क, गणित। जानना कुछ बात और है। जानना अनुभव है।

मैं उस दिन
नदी के किनारे पर गया
तो क्या जाने
पानी को क्या सूझी
पानी ने मुझे
बूंद-बूंद पी लिया
और मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिया जाकर पानी से
उसकी तरंगों में
नाचता रहा

रात-भर
लहरों के साथ-साथ
सितारों के इशारे
बांचता रहा !

डुबकी मारने की कला चाहिए। ऐसी कला चाहिए कि तुम परमात्मा को ही न पिओ, परमात्मा तुम्हें पी ले।

और मैं
पिया जाकर पानी से
उसकी तरंगों में
नाचता रहा

रात-भर
लहरों के साथ-साथ
सितारों के इशारे
बांचता रहा !

कहां वेद ! कहां कुरान ! सितारों में इशारे हैं। तुम्हारी श्वास-श्वास में इशारे हैं। लेकिन जिनके जीवन में न तो भक्ति का कोई लक्षण है, न प्रेम का कोई रंग है, जिनके जीवन में वैराग्य का कोई अनुभव नहीं है, वैराग्य की तो बात छोड़ो, जो अभी राग से भी परिचित नहीं हैं। राग में ही नहीं पक पाए थे अभी और कच्चे-कच्चे भाग गये। जैसे कुम्हार घड़ों को पकाता है आग में, ऐसे संसार का राग आग है जिसमें पको तो ही मजबूत घड़े बन सकोगे। कोई होशियार घड़ा आग से बचने के लिए कच्चा ही भाग खड़ा हो, ऐसे ही घड़े तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी बने बैठे हैं। कच्चे घड़े। पानी के एक ही झोंके में बह जाएंगे। राग ही नहीं पका है अभी तो वैराग्य कैसे होगा ? राग के अंतिम चरण में वैराग्य होता है।

बुद्ध हुए विरागी। हो सके। क्योंकि राग ने पका दिया था। महावीर हो सके विरागी, क्योंकि राग ने पका दिया था। जैनों के चौबीस तीर्थंकर ही राजपुत्र हैं। राग ने पकाया। ऐसा पकाया कि फिर वैराग्य का फल लगा। यह तुम्हें उल्टी बात लगेगी ! लेकिन ख्याल रखो, यह जीवन का नियम ऐसा है। यहां आग से गुजरे बिना सोना कुंदन नहीं बनता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गधे ने
शेर की खाल ओढ़ी
महज़ एक कहावत है
मुहावरा है
एक झूठ है
पर तुम्हें
वस्त्रों से खींच कर देखने पर
भीतर छिपे
सर्प, सियार से लेकर
भेड़िया
और गिद्ध तक
नजर आते हैं साफ-साफ...
आदमी की खाल
जंगल ने पहन ली
एक सच है !

वह तो कहावत है कि गधे ने शेर की खाल ओढ़ी। गधों में इतनी अकल कहां कि शेर की खाल ओढ़ लें ? आदमी में इतनी अकल जरूर है कि गधे हैं और शेर की खाल ओढ़ लें। पांडित्य का आवरण ओढ़ लें। लेकिन बस आवरण आवरण ही है। और गधा शेर की खाल भी ओढ़ ले तो क्या होता है ? मौके-बे-मौके रेंक देगा। बस, सब पोल-पट्टी खुल जाएगी। पंडित को जरा खरोंचो—जरा खरोंचो और भीतर से सारे जंगली जानवर निकलने शुरू हो जाएंगे। पूरा जंगल भीतर छिपा है।

कारण ?

कारण है कि हम संसार को कच्चा छोड़ कर भाग रहे हैं। इसलिए मैं अपने संन्यासी को संसार छोड़ने को नहीं कहता। मैं कहता हूं, आएगा एक वैराग्य; जरा ठहरो ! जरा हिम्मत रखो ! जरा इस आग से गुजरो राग की ! इसी आग से गुजरकर वैराग्य आएगा। राग की ही अंतिम परिणति वैराग्य है। बुद्ध ने अगर राग को न जाना होता तो कभी बुद्ध न हुए होते।

कल की रात
मैं निश्चित ही गौतम बुद्ध बन जाता,
अज्ञानी था
ज्ञानी और प्रबुद्ध बन जाता,
पर बन न सका।
वनवास को वस्त्र मान कर पहन न सका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि मैं सिद्धार्थ नहीं था
सामान्य था।
तन-मन में या जड़-चेतन में
कहीं भी परमार्थ नहीं था।
घर छोड़ नहीं सका,
क्योंकि
इतना पुरुषार्थ नहीं था।

कल दोपहर
आराम से बैठ कर अपने रथ पर
अनजाने त्याग-सा
निकल पड़ा
पाटलिपुत्र के राजपथ पर।
घोड़ों की जगह जुती थीं मेरी इन्द्रियां,
सारथि की जगह बैठा था
मेरा स्वार्थ।
चौराहे को पार करते न करते
एक चमकती लंबी कार
उससे उठी धूल
और धूल के परदे के पार
देवता की तरह मुस्कराते देवदार और कचनार।
मेरी अंतरात्मा प्रलोभन से भर गई–
हाय, मेरी यह दशा कब होगी ?
सारथि, मेरे रथ को लौटा ले !
मुझे कहीं नहीं जाना है।

पहले घर जाकर खाना खाना है,
जल्दी से पार्ट टाइम ट्यूशन पर जाना है,
पंचर जुड़वाना है, ख़ाता खुलवाना है।
सारथि, मेरे रथ को लौटा ले !
मुझे कहीं नहीं जाना है।

शाम को
अपने थके-मांदे अस्तित्व को
रथ में घसीटता-सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घोड़ों को पुचकारता, मारता, पीटता-सा
क्षय के रोगी-सा निस्तेज कमजोर
मैं लौट रहा था
अपने राजमहल की ओर।
राह की बगल में बिछे
खेल के मैदान की पगडंडी पर
एक स्वस्थ सुंदर नवयुवक के
पुष्ट तन को देख
उसके बलिष्ठ हाथ, पैर और गर्दन को देख,
उसके उभार, घेराव और संवर्धन को देख
मैं ईर्ष्या से जल उठा–
हाय, मेरी यह दशा कब होगी
सारथि, मेरे रथ को लौटा ले !
मुझे कहीं नहीं जाना है।
पहले दवा के लिए डाक्टर पहाड़े के घर जाना है,
फिर कसरत करने के लिए अखाड़े पर जाना है
...सारथि, मेरे रथ को लौटा ले !
मुझे कहीं नहीं जाना है।
रात को
दूधधुले कपड़ों पर दो-चार गहने,
गहनों के इर्द-गिर्द मोगरे की माला पहने
आंखों में बोतल-दो-बोतल का नशा लिए,
भिंडी बाजार के कोठों के पास से गुजरते हुए,
इधर-उधर आंखों से दृश्यों को चरते हुए,
काम-विह्वल पाषाण-युग के दो नग्न बुतों को देख,
अंधकार में उजागर होती उसकी करतूतों को देख,
मैं वासना में डूब गया–
हाय, मेरी यह दशा कब होगी ?
सारथि, मेरे रथ को लौटा ले !
मुझे कहीं नहीं जाना है।
पहले ससुराल जाकर यशोधरा को लाना है,
उसके गहने बनवाना है,
सलवार सिलवाना है,
कुर्ती कटवाना है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और
राहुल को स्कूल में भर्ती कराना है।
सारथि, मेरे रथ को लौटा ले !
मुझे कहीं नहीं जाना है।
तो कल की रात,
मैं
निश्चित ही गौतम बुद्ध बन जाता,
अज्ञानी था,
ज्ञानी और प्रबुद्ध बन जाता,
पर बन न सका।
वनवास को वस्त्र मानकर पहन न सका
क्योंकि मैं सिद्धार्थ नहीं था
और आगे अगर खुली नज़रें रहीं
तो कहीं बन न जाऊं,
इसलिए
आंखों पर चश्मा काला लगा लिया है
और
कहीं रात को घर से भाग न जाऊं
इसलिए
द्वार बंद करके
भीतर से ताला लगा लिया है।

नहीं, बिना राग को ठीक से जाने, पहचाने, राग के साक्षी बने वैराग्य का अवतरण नहीं होता है। तुम्हारे भगोड़े संन्यासियों में तुम्हें वैराग्य नहीं दिखाई पड़ सकता।

कहीं तनिक नहिं छुई गया बैराग है।
अरे हां, पलटू जनमें पूत कपूत लगाया दाग है।।

और इन झूठे, कच्चे, भगोड़ों ने सारे संन्यास के ऊपर दाग लगा दिये। संन्यास ही इनके कारण निंदित, अपमानित, लांछित हो गया है। संन्यास को फिर ताजगी देनी है, फिर स्वास्थ्य देना है। क्योंकि संन्यास इस जगत का परम फूल है। जिस दिन इस पृथ्वी से संन्यास विदा हो जाएगा, उस दिन इस पृथ्वी पर रहने योग्य कुछ भी न रह जाएगा। संन्यास काव्य है, गरिमा है, गौरव है।

मगर गुजरना होता है राग की अग्नि से तो वैराग्य पकता है। गुजरना होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है संसार की कठिनाइयों से तो संन्यास का फूल खिलता है। तूफानों में से गुजर कर ही यह नौका किनारे लगती है। तूफान कसौटी है।

पगरी धरा उतारि टका छह सात का।
मिला दुसाला आय रुपैया साठ का।।
गोड़ धरे कछु देहि मुंड़ाये मूंड़के।
अरे हां, पलटू ऐसा है रुजगार कीजिये ढूंढ़िके।।

धर्म के नाम पर खूब धंधा चल रहा है। लोग छोड़ क्या रहे हैं—छोड़ने को कुछ है ही नहीं।

पगरी धरा उतारि टका छह सात का।

छह-सात टके की पगड़ी थी, उसको उतार कर रखा दिया और कहा, महान त्याग हो गया।

मैं एक सज्जन को जानता हूं। होम्योपैथी के डॉक्टर थे। डॉक्टरी तो चलती नहीं थी ! उनकी दुकान पर मरीज कभी मैंने देखा नहीं ! ऐसे ही मुहल्ले-पड़ोस के लोग अखबार पढ़ने के लिए आ जाते थे। फिर एक दिन मैंने देखा कि वे संन्यस्त हो गये। उन्होंने सब त्याग कर दिया। न पत्नी थी, न बच्चा। उतने पैसे भी कभी नहीं जुटा पाए कि शादी करते। मां-बाप बचपन में मर गये थे। कुछ पीछे छोड़ भी नहीं गये थे। दुकान चलती नहीं थी। इससे बेहतर कुछ और था भी नहीं।

कोई पांच-सात साल बाद मेरा उनसे मिलना हुआ। तो बड़े सम्मानित हो गये थे ! बात-बात में दोहराते थे कि मैंने लाखों पर लात मार दी। जब और लोग चले गये, मैंने उनसे कहा कि कम-से-कम मेरे सामने तो यह न कहो। मुझे तुम्हारी होम्योपैथी कितनी चलती थी, वह मालूम है। और जहां तक मुझे याद है, पोस्ट आफिस में तुम्हारे बासठ रुपये से ज्यादा नहीं थे। और वे भी तुमने किस हिसाब से इकट्ठे कर लिये थे, चमत्कार है ! तुम लाखों की बात कर रहे हो, कि लाखों पर लात मार दी ! उन्होंने बड़ी नाराजगी से मुझे देखा। सत्य को कोई बर्दाश्त नहीं करता। तब से वे इतने नाराज हो गये हैं कि मेरे खिलाफ जो भी बनता है बोलते रहते हैं। और वह आदत उनकी गयी नहीं। वे कहते ही चले जाते हैं कि मैंने लाखों पर लात मार दी। क्योंकि लोग सम्मान उतना ही देते हैं जितना तुमने त्याग किया हो।

त्याग करने का भी लोगों के पास कुछ नहीं है—तुम जरा देखो तो जाकर ! जब कुंभ का मेला भरता है, तुम जरा अपने संन्यासियों को, साधुओं को, नागा बाबाओं को, उनकी कतारों को तो देखो ! उनके पास कुछ था जिसको इन्होंने छोड़ा है ? उनके पास कुछ था ही नहीं। इसलिए छोड़ने का मजा भी ले लिया और त्यागी भी बन गये, महा त्यागी बन गये !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पगरी धरा उतारि टका छह सात का।

छह-सात टके की पगड़ी थी, वह रख दी और–

मिला दुसाला आय रुपैया साठ का।।

और लोगों ने बड़ा सम्मान दिया। लोगों ने कहा–महा त्यागी !

गोड़ धरे कछु देहि मुंड़ाये मूंड़के।

सिर से अगर बाल घुटवा दिये, तो कौन-सी बड़ी कला हो गयी ! और अगर जमीन पर घुटने टेक कर आकाश की तरफ हाथ जोड़ कर तुमने प्रार्थना भी कर ली, तो क्या हो गया ?

अरे हां, पलटू ऐसा है रुजगार कीजिये ढूंढ़िके।।

अगर रोजगार ही करना हो तो यह रोजगार है, ढूंढ़ कर करने जैसा है। कुछ लगता भी नहीं और धंधा भी खूब चलता है। कुछ खर्च भी नहीं, कुछ पूंजी भी नहीं लगती, कुछ ब्याज भी नहीं भरना पड़ता, सिर्फ बकवास आनी चाहिए। बकवास को लोग ब्रह्म-ज्ञान समझते हैं। सीख लो कुछ तुलसीदास की चौपाइयां और सीख लो कुछ गीता और सीख लो कुछ पुराण की कथाएं–और तुम ज्ञानी हो गये।

मसक्कत ना है सकी मुंड़ाया मूड़ तब।

जब मेहनत नहीं हो सकी, तो सिर मुंड़ा लिया।

सेंति-मेंति में खाय मिला औसान अब।।

अब बिना कुछ मेहनत किये, मुफ्त खाने को मिलने लगा, संन्यास हो गया। सम्मान मिलने लगा, आदर मिलने लगा, मुफ्त खाने को मिलने लगा। जिस आदमी के तुम चरण छूते हो संन्यासी देख कर, वही आदमी अगर गैर-संन्यासी के वेष में तुम्हारे द्वार पर भीख मांगने आए तो तुम दो पैसे नहीं दोगे। एक प्रतिष्ठा हो गयी। मुफ्त। इससे सस्ता और क्या धंधा होगा !

तब नागा है लिहिन, रहे ना काम के।

और जब देखा कि इस तरह प्रतिष्ठा मिलती है–सिर मुंड़ा लिया, आदर मिला–कुछ था भी नहीं छोड़ने को, दो-चार टके की पगड़ी थी, वह त्याग दी–इतना आदर मिला–जब यह समझ में आ गया गणित, तो लोग कपड़े तक छोड़ देते हैं। कपड़ों में भी कुछ नहीं था, फटे-पुराने थे; शायद अपने भी न हों, मांगे-तूंगे हों, उधार हों। लोग नग्न तक हो जाते हैं; क्योंकि नग्न साधु को बहुत आदर मिलता है। उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो परम त्याग कर दिया। हमने ऐसी मूढ़तापूर्ण धारणाएं बना ली हैं। कोई भूखा मरे, महात्यागी ! कोई नंगा खड़ा हो जाए, महात्यागी ! कोई धूप में खड़ा रहे, महात्यागी !

हमने त्याग की बड़ी असृजनात्मक धारणाएं बना ली हैं। कोई गीत रचे, कोई वीणा बजाए, कोई बांसुरी पर सुर उठाए, अनाहत भी जगा दे, तो भी हमें फिक्र नहीं; हमें फिक्र है : उपवास कितने किये ? बांसुरी कितनी बजाई, इसकी हमें फिक्र नहीं; वीणा पर कैसे तार छेड़े, इसकी हमें फिक्र नहीं; दीये जल जाएं चाहे वीणा पर तार छेड़ने से, लोगों के हृदय के दीये जल उठें, तो भी हमें फिक्र यह है कि कपड़े हैं कि नंगा है ? खाना खाता है कि नहीं खाता ? पानी छान कर पीता है कि नहीं पीता ? हमने ऐसी क्षुद्र धारणाएं बनाई हैं।

शायद ये चालबाज लोगों ने ही हमें ये धारणाएं पकड़ा दी हैं। क्योंकि इन बातों को वे पूरा कर सकते हैं। इन बातों को पूरा करना बिलकुल आसान है। दीपक राग बजाना तो आसान नहीं—कोई तानसेन बजाए ! किसी के सोए हुए प्राण को जगा देना तो आसान नहीं—कोई बुद्ध जगाए ! किसी की निद्रा को तोड़ देना तो आसान नहीं—कोई कबीर, कोई नानक चाहिए ! किसी के प्राणों को आकाश की तरफ मोड़ देना कुछ आसान तो नहीं—कोई जरथुस्त्र, कोई जीसस चाहिए ! मगर भूखे मरना या नंगे खड़ा हो जाना या सिर मुंडा लेना या पालथी मार कर बैठ जाना, यह तो कोई भी मूढ़ कर सकता है, इसमें तो किसी भी प्रतिभा की कोई जरूरत नहीं।

हमें संन्यास की परिभाषा बदलनी होगी। हमें इस थोथे संन्यास की परिभाषा को छोड़ना होगा। इस थोथी परिभाषा के कारण थोथे लोग बड़े आदृत हो गये हैं। और जिनका सच में आदर होना चाहिए, वे हमारी आंखों से ही अलग हो गये हैं। हम उन्हें देख ही नहीं पाते। जहां कुछ सृजन होता हो, जहां कुछ फूल खिलते हों, जहां जीवन और जगत को कुछ और सुंदर बनाया जाता हो, जहां कुछ और इन्द्रधनुष आकाश से जमीन तक उतारे जाते हों, वहां; जहां नृत्य हो, उत्सव हो, वहां; वहां सम्मान करो। जहां आंतरिक समृद्धि प्रगट होती हो, प्रसाद जहां हो, जहां किसी की उपस्थिति में परमात्मा छाया हो, जहां किसी की उपस्थिति में प्रेम की वर्षा होती हो, जहां मस्तों की मधुशाला खुली हो, वहां हमारा सम्मान होना चाहिए। तो हम संन्यास को एक नयी गरिमा और गौरव देने में सफल हो सकते हैं।

अरे हां, पलटू मारि-पीटिके, खाहिं सो बेटा राम के।।

इस तरह जबर्दस्ती का ठेंगा सिर पर...तुमने देखा कभी-कभी आ जाते हैं दरवाजे पर संन्यासी। बजाते हैं चमीटा जोर से ! और घबड़ाहट भी होती है घर में, क्योंकि उन्होंने ये भी कहानियां फैला रखी हैं कि अगर संन्यासी को लौटा दिया, नाराज हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाए—दुर्वासा की कहानियां तो तुमने सुनी न—गुस्सा आ जाए; दे ही दो कुछ, झंझट छुड़ाओ ! क्योंकि वह आगे-पीछे चमीटा बजाता घूम रहा है। आगे पीछे कदम रखता है, चमीटा बजाता है, घबड़ाहट पैदा कर देता है घर में कि दो रोटी देकर इससे छुटकारा करो ! कहीं कोई अभिशाप दे दे, कुछ हो जाए, तो जनम-जनम बिगाड़ दे ! उसने बड़ा डर पैदा कर रखा है। उस डर के कारण ही तुम उसे खिलाए जा रहे हो, पिलाए जा रहे हो, सम्मान दिये जा रहे हो। भिखमंगे संन्यासी मालूम हो रहे हैं। और संन्यासी पहचानने की तुम्हारी आंखें ही खो गयी हैं। नहीं, ये राम के बेटे नहीं हैं, ये कपूत हैं, ये दाग हैं।

राम के बेटे चाहिए। मगर राम का बेटा होना आसान तो नहीं। अग्नि से गुजरना हो !

ओ गंध-मधु पर झूमनेवाले
और
रस-किंजल्क पर गूंजनेवाले !
तुम्हें मालूम इतना ही
कि रवि की मुदित किरणों का परस पाकर
सुबह
मैं खिल उठा सहसा :
अचानक हो गई मैं
पुष्पिता,
स्निग्धा,
पुलक-सिहरनमयी।
अलि-किशोरों को नहीं मालूम
कितना क्लेश
निशि भर झेलती हूं
सुबह खिलने के लिए :
किस तरह हर पंखुड़ी पर
रंग-राग-पराग रचकर
और
लेकर प्रस्फुटन की पीर,
देकर रस-विभा संपूर्ण अपनी
एक कोरक में
विकच होती...
कली से फूल बन जाती,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप-रस के उपकरण चुन-चुन जुटाती
रात-भर उन्निद्र।
जिस निशा में सभी निद्रालीन रहते,
उसी के हर याम में
मैं प्राणपण से जाग
रूप-यौवन का नया संसार रचती हूं।
मैं कमलिनी नहीं केवल,
कवि : (रचयिता) हूं।
कहां है ज्ञात रसिकों को
कि
रचना रक्त से बनती ?
कहां अनुमान है इसका
किसी उन्मत्त भौंरे को
कली से फूल बनने में
कमलिनी
किस तरह का क्लेश
निशि भर भोगती रहती ?

सस्ता नहीं है संन्यास ! सुगंध मुफ्त नहीं मिलती। बहुत पीड़ाओं से गुजर कर फूल में गंध आती है। मिट्टी के फूल तक की लंबी यात्रा है। कीचड़ से कमल तक की लंबी यात्रा है। और उसी यात्रा का नाम संन्यास है।

आज इतना ही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2.

धर्म की भाषा है : वर्तमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओशो,

पारस के स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है। लोहा पारस हो जाए, क्या यह संभव है ?

ओशो,

नामजप करते-करते उम्र ढल गयी। हाथ तो कभी कुछ लगा नहीं। लेकिन जब भी तथाकथित पंडित-पुजारियों, साधु-महात्माओं से पूछा, तो उन्होंने कहा—बेटा, यह कार्य जन्मों की साधना से होता है। और जीवन के अंतिम पहर में अब आप मिले तो लगता है : मैं भी किन धोखेबाजों के चक्कर में पड़ा रहा ! अब मैं क्या करूं ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओशो,
ये युगल बावरे नैन
और तू दूर देश का वासी
चिर से तव दर्शन की उत्कट अभिलाषा है
तेरे इस मधुर मिलन की इनको आशा है
दर्शन से पहले भी ये कुछ-कुछ गीले हैं
बात मिलन की करें, सजन उन्मीले हैं
तुम बने क्षितिज हम धूल सभी से हैं ये धारावाही
ये युगल बावरे नैन
और तू दूर देश का वासी
तेरी कटाक्ष की ऊषा किरण इक पहली थी
और तभी हृदय-मकरंद पंखुड़ी फैली थी
रह गया अधखिला क्या केवल मुरझाने को
पहले वसंत में ही क्या पतझड़ बन जाने को
मैं इस वियोग वेला में हूं अब व्यथासिंधु अवगाही
ये युगल बावरे नैन
और तू दूर देश का वासी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहला प्रश्न : ओशो, पारस के स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है। लोहा पारस हो जाए, क्या यह संभव है ?

साधु शरण, लोहा न तो सोना होता और न पारस। पारस तो केवल एक प्रतीक है। प्रतीक की तरह बहुमूल्य है; यथार्थ की तरह तो झूठ है। पारस तथ्य नहीं है, एक सत्य है।

-221473

तथ्य और सत्य के भेद को ठीक से समझ लेना।

तथ्य तो उसे कहते हैं, जिसका अस्तित्व है। विज्ञान की पकड़ में जो आ सके, तराजू पर तौला जा सके, हाथ जिसे छू सकें, आंख जिसे देख सकें; जिसका रूप है, आकृति है, वजन है। तथ्य तो भौतिक होता, सत्य अभौतिक। न तराजू तौल सकता है, न हाथ छू सकते हैं, न आंख देख सकती हैं। सत्य का ही मूल्य है। सत्य की ही गरिमा है। और जब हम प्रतीकों का प्रयोग करते हैं, तो सदा स्मरण रखना, वे तथ्य नहीं हैं, सत्य हैं।

पारस एक सत्य है। सत्संग के लिए किया गया एक अनूठा काव्यात्मक प्रतीक। सद्गुरु के साथ जुड़ जाए कोई, समग्ररूपेण, तो उस संस्पर्श में लोहा सोना हो जाता है। लोहा सोना हो जाता है, इसका अर्थ ही यह हुआ कि लोहा तो सोना था ही, सिर्फ सोया था और उसे अपना बोध न था। जगाने वाले ने जगा दिया। तुम मुर्दा को नहीं जगा सकते हो, तुम सोए आदमी को जगा सकते हो।

मुर्दा और सोया हुआ आदमी दोनों एक-से मालूम पड़ते हैं, एक से नहीं हैं। बड़ा भेद है। जमीन-आसमान का भेद है। मुर्दा जगाया नहीं जा सकता। सोया हुआ आदमी जगाया जा सकता है। सोया हुआ आदमी जागने में संपूर्ण रूप से कुशल है, क्षमतावान है। उसकी संभावना है जागना, इसीलिए सोया है। सोता वही है जो जाग सकता है। जागता वही है जो सो सकता है।

सोना और जागना एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोहा सोना हो जाता है, इसका अर्थ इतना ही है कि लोहा सोना था ही। पारस ने झकझोर दिया, लोहे को याद आ गया कि मैं कौन हूं। नहीं कि लोहा था और सोना हो गया। बस इतना ही कि स्मरण न था और स्मरण आ गया। बेहोशी थी, बेहोशी टूट गयी। अपने को ही भूला बैठा था, सुरति आ गयी। सत्संग है सुरति को जगाने की प्रक्रिया। और निश्चित ही कोई जागा हुआ ही सोए हुए को जगा सकता है। सोया हुआ तो सोए हुए को कैसे जगाएगा ? सोया हुआ तो हो सकता है जागे हुए को भी सुलाने लगे।

तुमने कभी ख्याल किया होगा, तुम्हारे पास अगर कोई आदमी बैठा-बैठा ऊंघने लगे, जंभाई लेने लगे, तो तुम्हें भी ऊंघ आने लगेगी, जंभाई आने लगेगी। उसकी नींद तुम्हें भी पकड़ने लगेगी। उसकी नींद संक्रामक है। और यह तो साधारण नींद है, आध्यात्मिक नींद तो और भी गहरी जाती है। और तुम नींद से भरे हुए लोगों से मिलते हो। उनसे ही तुम्हारे संबंध हैं, नाते हैं, रिश्ते हैं। चारों तरफ सोए हुए लोगों की दुनिया है। इस सोए हुए लोगों के सागर में जागना बड़ा असंभव मालूम होता है। यहां तो सौभाग्यशाली है वह, जो किसी जागे हुए के साथ हो ले !

जागे हुए के साथ हो लो, तो जैसे नींद संक्रामक है वैसे ही जागरण भी संक्रामक है।

सत्संग का अर्थ है : कोई जागा है, तुम सोए हो, तुमने जागे हुए का हाथ पकड़ लिया। तुमने जागे हुए से इतनी प्रार्थना की कि मैं तो सो-सो जाऊंगा, मुझे भूल मत जाना, मुझे जगाए जाना। मैं तो बार-बार बेहोश हो जाऊंगा, छोड़ मत देना आशा मुझ पर, चेष्टा जारी रखना।

लोहा सोना नहीं होता, सोना ही है लोहा। इसीलिए सोना हो जाता है। लोहा पारस भी नहीं होता। लेकिन लोहा जैसे सोना है सोया हुआ, जागने लगे तो सोना होने लगे; जिस दिन परिपूर्ण जागरण घटता है कि फिर लौट कर सोने की कोई संभावना न रही, उस दिन लोहा भी पारस हो गया। पारस का अर्थ है : अब वह दूसरों को भी जगाने में समर्थ हो गया।

जो सोया है, वह एक आदमी है; जो अधजागा है, वह; और फिर जो पूर्ण जागा, वह—ये तीन स्थितियां हैं जागरण की। बिलकुल सोया है जो, वह तो मानता ही नहीं कि मैं सोया हूं। यह नींद की पराकाष्ठा है कि जब सोया हुआ आदमी मानने को राजी नहीं होता कि मैं सोया हूं। इनकार करता है कि कौन कहता है कि मैं सोया हूं ? मैं तो जागा हुआ हूं ! मुझसे जागा हुआ और कौन है ? यह नींद को बचाने की सबसे बड़ी व्यवस्था है। यह नींद की ईजाद है अपनी सुरक्षा के लिए; नींद तुम्हें धोखा देती है कि मैं तो जागा हुआ हूं। अब जागने का सवाल ही कहां है ? बात ही न रही ! सत्संग करूं क्यों ? सत्य को उपलब्ध व्यक्तियों को खोजूं क्यों ? कहीं झुकूं क्यों ? मैं तो वहां हूं जहां होना चाहिए। इसी तरह प्रत्येक आदमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोचता है। दुनिया में अधिक लोग इसी भांति सोचते हैं। और इसी भांति जीवन को गंवा देते हैं।

सोचते हैं जागे हैं और गहरे सो रहे हैं। नींद में बड़बड़ा रहे हैं। बड़बड़ाने को ही सोचते हैं : ज्ञान। सपने चल रहे हैं, लेकिन सपनों को ही समझते हैं सत्य। जिंदगी ऐसे बीत जाती है। ऐसा अपूर्व अवसर इस भांति मिट्टी हो जाता है कि बहुत पछताओगे पीछे ! लेकिन यह सामान्य दशा है आदमी की।

गुर्जिएफ अपने कुछ शिष्यों को लेकर—तीस शिष्यों को लेकर—रूस के एक दूर एकांत कोने में, तिफलिस के पास ध्यान के प्रयोग करवा रहा था। जो प्रयोग था, कठिन था। जन्मों-जन्मों से सोए आदमी को जगाना आसान है भी नहीं ! उसने जो प्रयोग दिया था, वह यह था—एक ही बंगले में तीस लोग थे गुर्जिएफ के साथ और उसने तीसों को कहा हुआ था कि तुम इस तरह रहना इस बंगले में जैसे उनतीस हैं ही नहीं। तुम ऐसे ही रहना जैसे तुम अकेले हो। उनतीस को भूलने की कोशिश करना।

क्यों ?

क्योंकि इन उनतीस को तुमने याद रखा तो तुम अपनी याद न कर सकोगे। यह उनतीस ही तो भीड़ है। यही तो समाज है। यही तो सोए हुए लोगों का जगत है। इनको तुम बिलकुल भूल जाओ। इनके पास से भी निकलो तो नमस्कार भी मत करना, मुस्कराना भी मत, इंगित-इशारा भी मत करना दूसरे को कि वह है। चलते समय दूसरे के शरीर को तुमसे ठोकर भी लग जाए तो रुक कर क्षमा भी नहीं मांगना। है ही नहीं दूसरा यहां कोई, तुम अकेले हो। और गुर्जिएफ ने कहा, जिसने भी इस तरह का सबूत दिया कि वह दूसरे को भी स्वीकार करता है, उसे मैं बाहर निकाल दूंगा। और स्वभावतः जब कोई है ही नहीं, तो बात किससे करनी है। इसलिए पूर्ण मौन।

तीन दिन बीतते-बीतते सत्ताईस आदमी विदा कर दिये गये। बड़ा मुश्किल मामला था। छोटा-सा बंगला, जिसमें तीस आदमियों का रहना—एक-एक कमरे में सात-सात आठ-आठ आदमी बैठे हुए हैं—कैसे बचोगे यह सोचने से कि दूसरे नहीं हैं ? तीन व्यक्ति बचे। और महीना पूरा होते-होते केवल एक व्यक्ति बचा। वही व्यक्ति था पी. डी. ऑस्पेन्सकी, जिसने गुर्जिएफ की विचारधारा को सारे जगत में फैलाया।

तीन महीने पूरे हो जाने पर गुर्जिएफ उसे लेकर बाजार में गया, तिफलिस के बाजार में गया। घुमाया सारा बाजार। लौट कर तीन महीने के बाद पहली दफा पूछा कि बाजार में क्या देखा ? ऑस्पेन्सकी ने कहा कि हर आदमी को सोया हुआ देखा। सोए हुए लोग चल रहे हैं, सोए हुए लोग दुकान कर रहे हैं, सोए हुए लोग सामान खरीद रहे हैं; सोयों की बस्ती देखी ! ऐसा मैंने पहले कभी नहीं देखा था, क्योंकि मैं खुद ही सोया था। पागलों को देखा। ऐसा मैंने कभी नहीं देखा था, क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं खुद ही पागल था। विक्षिप्त, स्वप्नलीन, निद्रित भीड़-भाड़ देखी। व्यर्थ का शोरगुल देखा। जिसमें कुछ अर्थ नहीं है, जिसका कोई प्रयोजन नहीं है। लोग नाहक यहां से वहां भाग रहे हैं। अपने को व्यस्त किये हैं। मगर यह मैंने पहली दफा देखा। इन तीन महीनों में जो शांति उपलब्ध हुई, उसने यह क्षमता दी, यह आंख दी।

गुर्जिएफ एक जागा हुआ आदमी। ऑस्पेन्सकी एक सोया हुआ आदमी था, लेकिन जागा। जागने लगा, नींद टूटने लगी, सपने उखड़ने लगे। थोड़ा-थोड़ा होश आने लगा।

जागरण और निद्रा के बीच की अवस्था को योग में तंद्रा कहते हैं। थोड़े-थोड़े जागे, थोड़े-थोड़े सोए। साधारण आदमी बिलकुल सोया है, सत्संगी तंद्रा में होता है—थोड़ा जागा, थोड़ा सोया। सोना हो गया लोहा, यह अर्थ है इस प्रतीक का। फिर जब पूरा जाग जाएगा, जब शिष्य शिष्य ही नहीं रह जाएगा वरन् सद्गुरु होने की स्थिति पा लेगा—सद्गुरु होने की स्थिति का अर्थ है : अब न केवल ख़ुद जाग गया है बल्कि समर्थ हो गया कि औरों को भी जगा दे—तब पारस हो गया।

साधु शरण, लोहा तो लोहा ही रहता है, कैसे सोना होगा, कैसे पारस होगा ? अगर यह लोहे की बात नहीं है, यह किसी और ही तल की बात हो रही है—लोहा तो प्रतीक है। यह सोए हुए आदमी का नाम लोहा, अधजगे आदमी का नाम सोना, पूर्णरूप से जागे हुए बुद्धपुरुष का नाम पारस। अगर प्रतीक समझ में आ जाए, तो तुमने सत्य समझा। और अगर प्रतीक को तुमने मुट्ठी में बांध लिया और उसी को समझे कि यही यथार्थ है, तो तुम मूढ़ता में पड़ जाओगे। बहुत-से मूढ़ लोग इसी कोशिश में लगे रहे हैं—कई पारस की तलाश करते हैं, सदियों से, सारी दुनिया में, न मालूम कितने लोगों ने जीवन बर्बाद किया, पारस पत्थर की तलाश कर रहे हैं ! उनका ख्याल है कि कहीं किसी झील में, किसी पहाड़ पर, किसी खदान में पारस पत्थर मिल जाएगा। फिर क्या कहने हैं ! छुएंगे लोहा और सोना हो जाएगा ! ऐसा पारस पत्थर कहीं भी नहीं है।

ऐसा पूरब में ही रहा, ऐसा नहीं, पश्चिम में भी। इसी के समानांतर पश्चिम में कीमियागर हुए, 'अलकेमिस्ट' हुए। उन्होंने पूरी जिन्दगी इसी बात में गंवाई कि किस तरह हम यह सूत्र खोज लें, तरकीब खोज लें, फार्मूला खोज लें, जिससे कि लोहे को सोना बनाया जा सके। वह जिन्दगी भर बड़े-बड़े प्रयोग करते रहे। एक प्रतीक—काव्य-प्रतीक—जब मूढ़तापूर्ण ढंग से तथ्य की तरह पकड़ लिया जाता है, तो इसी तरह की अड़चनें होती हैं, इसी तरह के उपद्रव होते हैं।

और इस प्रतीक के संबंध में ऐसा नहीं हुआ, धर्मों के सोर प्रतीक ऐसे ही गलत हो गये हैं।

बुद्ध को ज्ञान हुआ, बौद्ध-शास्त्र कहते हैं : आकाश से फूलों की वर्षा शुरू हो गयी। झर-झर-झर आकाश से फूल झरने लगे। अलौकिक फूल, अलौकिक उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गंध। वे पृथ्वी के नहीं थे, आकाश के फूल थे। बौद्ध कहते हैं, ऐसा सच में हुआ। यह ऐतिहासिक तथ्य है, वे कहते हैं। उन्हें कुछ पता नहीं कि इससे इतिहास का कोई संबंध नहीं है। आकाश को क्या पड़ी है फूल बरसाने की ! ऐसे कहीं फूल गिरते हैं ! फिर किसी और बुद्धपुरुष के जीवन में ऐसा उल्लेख नहीं है। महावीर भी बुद्धत्व को उपलब्ध हुए—नेमि और पार्श्व, कृष्ण और पतंजलि, जरथुस्त्र और जीसस—लेकिन फूल किसी पर बरसे नहीं। यह काव्य-प्रतीक है। यह इस बात की खबर है कि अस्तित्व आनंदमग्न हुआ। यह इस बात की खबर है कि अस्तित्व खिल गया बुद्ध के साथ। प्रमुदित हो गया। जैसे सुबह सूरज निकले और फूल खिल जाएं; जैसे वसंत आए और फूल झर-झर झरने लगें, ऐसा बुद्ध के भीतर बुद्धत्व क्या आया, सारे अस्तित्व में आनंद की लहर दौड़ गयी। इस बात को कैसे कहें कि अस्तित्व उत्सवमय हो गया ?

बुद्ध ने कहा है : जिस दिन मैं बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ, उस दिन मेरे साथ सारा अस्तित्व बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया। बुद्ध यह कह रहे हैं, उस दिन मैंने फिर किसी को किसी और रूप में नहीं देखा। सोए हुए बुद्ध, भटके हुए बुद्ध—मगर बुद्ध तो बुद्ध हैं; चाहे सोए हों चाहे भटके हों; चाहे आंखों पर पट्टियां बांधे हों, चाहे कीचड़ में अपने को डुबा लिया हो; मगर बुद्ध तो बुद्ध हैं। हीरा तो हीरा है, कीचड़ में डाल दो तो भी हीरा है। कीचड़ हीरे को नष्ट नहीं कर पाएगा। तो बुद्ध यह कह रहे हैं : जब से मैं जागा और मैंने अपने भीतर देखा कौन है, तब से मुझे सबके भीतर वही ज्योति, वही प्रकाश, वही अमृत दिखाई पड़ने लगा है।

और जब एक व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध होता है, तो यह बिलकुल स्वाभाविक है कि सारे अस्तित्व में आनंद की, उल्लास की एक तरंग व्याप जाए। क्योंकि हम अस्तित्व से भिन्न नहीं हैं। अगर तुम्हारा हाथ बीमार था और स्वस्थ हो गया, तो क्या तुम्हारी पूरी देह को उसका स्वास्थ्य अनुभव नहीं होता ? तुम्हारी आंख में एक कंकरी पड़ी थी और आंख दुखती थी, तो पूरी देह को उसका दुख व्यापता नहीं था ? और जब आंख से कंकड़ निकल जाएगा और आंख प्रसन्न होगी, स्वस्थ होगी, तो क्या पूरी देह में उसके स्वास्थ्य की छाप न पड़ेगी ? प्रतिध्वनि नहीं होगी ? हम इस अस्तित्व से भिन्न नहीं हैं, एक हैं। इसी बात की खबर देने के लिए यह प्रतीक है, यह काव्य-प्रतीक है कि झर-झर-झर फूल गिरने लगे आकाश से। आकाश ने उत्सव मनाया, दीवाली मनायी। दीये जल गये आकाश में। बे मौसम के फूल खिल गये वृक्षों पर। सूखे वृक्षों में पत्ते आ गये। इनको तथ्य की तरह पकड़ोगे तो चूक जाओगे।

और दुनिया में दो ही तरह के मूढ़ हैं। एक हैं जो कहते हैं, ये तथ्य की तरह सत्य हैं। और फिर दूसरे हैं जो सिद्ध करने में लग जाते हैं कि ऐसा हो ही नहीं सकता; यह असंभव है। और दोनों सिरफोड़ी करते हैं। और दोनों गलत हैं। काव्यों को समझने का यह कोई ढंग नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीसस के संबंध में उल्लेख है कि मरने के बाद वे पुनरुज्जीवित हो गये। यह प्रतीक है। यह काव्य-प्रतीक है। लेकिन ईसाई इसको जोर से पकड़े हुए हैं। उनका सारा धर्म इस पर टिका हुआ है। अगर यह सिद्ध हो जाए कि जीसस का पुनर्-जीवन नहीं हुआ, तो ईसाइयत के प्राण निकल जाएंगे। रोम का चर्च तत्क्षण गिर जाएगा। बुनियाद का पत्थर खिसक जाएगा। पोप-पादरी विदा होने लगेंगे। उनका सारा का सारा अस्तित्व इस बात पर निर्भर है, इस झूठी बात पर कि जीसस पुनरुज्जीवित हुए।

इस जगत में मरने के बाद कोई पुनरुज्जीवित नहीं होता। इस जगत में कोई अपवाद नहीं होते। इस जगत में नियम सबके लिए समान हैं। यहां न कोई विशिष्ट है, न कोई हीन है। यह अस्तित्व सबके प्रति समभावी है। होना भी यही चाहिए। अगर अस्तित्व भी समभावी न हो, अगर यह भी पक्षपात करता हो कि जीसस मरें तो पुनरुज्जीवित कर दे, और कोई दूसरा मरे—ऐरा-गैरा-नत्थू खैरा—तो उसकी फिक्र ही न करें, तो यह अस्तित्व भी फिर बड़े अन्याय से भरा हुआ हो गया। जीसस के साथ दो चोरों को भी सूली हुई थी। वे तो मरे ही रहे और जीसस पुनरुज्जीवित हो गये। नहीं, यह पुनरुज्जीवन की बात तथ्य नहीं है। सत्य जरूर है। प्रतीक है।

इस प्रतीक में यह बड़ी गहन बात छिपी है कि जीसस जैसे व्यक्ति मरते ही नहीं। तुम लाख मारो, नहीं मरते। मारे-मारे भी नहीं मरते। क्योंकि जीसस ने जान लिया जीवन की शाश्वतता को, उसकी अमरता को। उन्होंने जान लिया कि न तो जन्म में मेरा जन्म है और न मृत्यु में मेरी मृत्यु है। उन्होंने जान लिया कि मैं जन्म के पहले भी था और मृत्यु के बाद भी हूं। जिनको समाधि उपलब्ध हुई है, उनकी फिर मृत्यु कैसी ! इस अनूठे सत्य को कहने के लिए यह पुनरुज्जीवन की कथा है। लेकिन तुम जिद करके अगर तथ्यों की तरह पकड़ लो तो मुश्किल हो जाती है।

मैंने सुना है, एक गणितज्ञ ने विवाह किया। पत्नी उसकी कवयित्री थी। पत्नी ने सुहागरात के दिन...और क्या करती, काव्य उसके हृदय में था; रसविभोर थी... एक गीत लिखा। गीत अपने पति को सुनाया। मगर वह यह भूल गयी कि पति गणितज्ञ है। और गणित की भाषा अलग है, काव्य की भाषा अलग है। उनके लोक अलग, उनके आयाम अलग, उनके आकाश अलग। पति ने तो गीत ऐसे सुना कि जैसे पत्नी पागल हो। क्योंकि पत्नी ने गीत में कहा था कि मेरे प्रिय, आकाश में चांद को देख कर मुझे तुम ही दिखाई पड़ते हो चांद में। तुम्हें देखती हूं, तुम्हारे चेहरे में मुझे आकाश का चांद दिखाई पड़ता है। पति ने कहा, ठहरो ! कहां चांद और कहां आदमी का चेहरा ! चांद कितना वजनी, कितना बड़ा और कहां आदमी का चेहरा ! मैं तो दब कर ही मर जाऊंगा अगर मेरे सिर पर कोई चांद रख दे। और चांद और मेरे चेहरे में क्या तालमेल है ? चांद में गड्ढे हैं—बड़े-बड़े गड्ढे हैं; ऊंचे-नीचे, ऊबड़-खाबड़—तुझे मेरा चेहरा ऐसा ऊबड़-खाबड़ दिखाई पड़ता है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्नी तो चौंकी होगी ! संवाद असंभव हो गया होगा। वे दोनों अलग भाषाएं बोल रहे हैं। वे दोनों एक-दूसरे की भाषा नहीं समझ सकते हैं।

और यही भ्रांति बढ़ती चली गयी है। क्योंकि तुम्हें शिक्षा दी जाती है गणित की, विज्ञान की, भौतिकशास्त्र की, रसायनशास्त्र की। तुम्हारा सारा-का-सारा मस्तिष्क तैयार किया जाता है तथ्यों के लिए। इसलिए दुनिया में काव्य रोज-रोज मरता गया है। कविता रोज-रोज तिरोहित होती गयी है। अब दुनिया में कालिदास, भवभूति, मिल्टन, शैली, रवीन्द्रनाथ के होने की संभावना रोज-रोज कम होती जाती है—रोज-रोज कम होती जाती है ! अब तो कवि भी जो कविता लिखते हैं, वह कचरे-जैसी होती है। अब तो कवि भी कविता लिखते हैं तो तथ्यों की ही बात होती है, सत्यों की नहीं। अब तो कवि भी हिम्मत नहीं जुटा पाते कि सत्यों की बात करें; क्योंकि लोग कहेंगे—पागल हो !

विन्सेन्ट वानगाग पश्चिम का एक बहुत बड़ा चित्रकार हुआ। उसके चित्र उसकी जिंदगी में समझे नहीं जा सके। क्योंकि उसके चित्र तथ्यगत नहीं थे। उसके चित्रों में सत्य तो बहुत थे लेकिन तथ्य बिलकुल नहीं थे। तथ्यों के विपरीत थे। जैसे उसने एक चित्र बनाया, जिसमें वृक्ष इतने ऊंचे हैं कि तारों के ऊपर निकल निकल गये हैं। अब वृक्ष कहीं इतने ऊंचे होते हैं कि तारों के ऊपर निकल जाएं ! तारे नीचे रह गये और वृक्ष ऊपर चले गये। किसी ने पूछा वानगाग को कि यह तो बिलकुल कपोलकल्पना है। इतने बड़े वृक्ष कहां होते हैं जो चांद-तारों के ऊपर जाएं ? वानगाग ने कहा, मैं तो जब भी वृक्षों को देखता हूं, तो मुझे एक ही बात दिखाई पड़ती है कि वृक्ष हैं पृथ्वी की आत्मा की आकांक्षाएं चांद-तारों को पार करने की। आज नहीं पार हुए हैं तो कल हो जाएंगे। मैं भविष्य देख रहा हूं। पृथ्वी की आकांक्षा तारों को छू लेने की। जब भी मैं वृक्ष को देखता हूं तो बस मुझे ऐसा ही दिखाई पड़ता है—पृथ्वी के फैले हुए हाथ, भुजाएं आकाश में उठी हुईं तारों को छूने की अभीप्सा, तारों के भी पार निकल जाने का प्रण। आज नहीं तो कल हो जाएगा, लेकिन मैं तो वैसा ही चित्रित करूंगा जैसा देखता हूं।

लेकिन यह देखना किसी द्रष्टा का होगा, ऋषि का होगा, कवि का होगा। यह देखना वैज्ञानिक का तो नहीं हो सकता। वैज्ञानिक तो कंधे बिचका कर अपने रास्ते पर हो जाएगा। कहेगा, दिमाग खराब है। होश की बातें करो !

इस बात को अगर तुम स्मरण रख सको, साधु शरण, तो फिर मैं तुमसे कहता हूं कि लोहा सोना हो जाता है; और, लोहा एक दिन पारस भी हो जाता है। मगर प्रतीक की तरह समझना। नहीं तो तुम तलाश करने लगो पारस पत्थर की।

कहानियां हैं कि लोगों ने पारस पत्थर की तलाश की। करीब-करीब इस देश के हर कोने में कहानियां हैं कि किसी झील में पारस पत्थर था।...मैं तो एक ऐसी झील पर गया, जहां मुझे यह कहानी बताई गयी कि यहां पारस पत्थर है। और एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा ने बड़ी मेहनत की पारस पत्थर को खोजने की। झील में उसने हाथियों के पैरों में जंजीरें लोहे की बंधवा कर और चलवाया—क्योंकि झील गहरी है, हाथी ही चल सकते थे। हाथी चले। एक हाथी की जंजीर सोने की हो कर वापस लौट आयी। तो इतना तो पक्का हो गया कि पारस है, मगर उसको खोजें कैसे ? बहुत हाथी चलाए, एक हाथी की जंजीर छू गयी होगी—संयोगवशात्। उस झील तक न मालूम कितने लोग पारस पत्थर की खोज में सदियों में आते रहे हैं।

इस तरह की मूढ़ता में मत पड़ जाना। ऐसा कोई पारस पत्थर नहीं है, ऐसी कोई झील नहीं है, ऐसा कोई लोहा नहीं है। तुम हो लोहा, जिसकी बात हो रही है। जागो तो सोना हो जाओ। और जगाने की क्षमता आ जाए तो तुम भी पारस हो ?

कांटे क्या हैं ? सुस्मृति हैं मधुभार धरे फूलों की
आहें क्या हैं ? विस्मृति हैं उन प्यार-भरी भूलों की
पीड़ा क्या है ? तड़पन है दुखियों के अंतस्तर की,
व्रीड़ा क्या है ? क्रीड़ा है यौवन में अजर-अमर की,
वैभव क्या है ? सपना है, इस छोटे-से जीवन का,
अपना क्या है ? खो देना, जीवन में अपनेपन का,

काव्य की भाषा समझना शुरू करो। क्योंकि धर्म की भाषा काव्य की भाषा के बहुत करीब है।

अपना क्या है ? खो देना जीवन में अपनेपन का

यह तो उलटबांसी हो गयी ! अपना क्या है ? खो देना जीवन में अपनेपन का। जो स्वयं को खो देता है, वह स्वयं को पा लेता है। गणित ऐसी भाषा से राजी नहीं होगा। लेकिन काव्य जरूर राजी होगा। काव्य की दुनिया में तो कांटे भी फूल हो सकते हैं।

कांटे क्या हैं ? सुस्मृति हैं मधुभार धरे फूलों की
आहें क्या हैं ? विस्मृति हैं उन प्यार-भरी भूलों की
पीड़ा क्या है ? तड़पन है दुखियों के अंतस्तर की,
व्रीड़ा क्या है ? क्रीड़ा है यौवन में अजर-अमर की,
वैभव क्या है ? सपना है, इस छोटे-से जीवन का,
अपना क्या है ? खो देना, जीवन में अपनेपन का,

धर्म काव्य के बहुत करीब है। गणित धर्म से बहुत दूर है। और तुम सब गणित की भाषा में रचे-पचे हो। बाजांर में वही भाषा चलती है। काव्य की भाषा तो कहीं भी नहीं चलती। बाजार की तो छोड़ ही दो, प्रेमियों के बीच भी काव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भाषा नहीं चलती। मां और बेटे के बीच नहीं चलती, भाई-भाई के बीच नहीं चलती, मित्र-मित्र के बीच नहीं चलती। वहां भी गणित, वहां भी हिसाब, वहां भी दो-दो कौड़ी का मोल-तोल चलता है। हमने तो सारी जिन्दगी बाजार बना दी है। हमने तो हर चीज दुकान बना दी है। और इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि काव्य को समझने में हम असमर्थ हो गये हैं। हमारी पहचान खो गयी है। और जो काव्य को समझने में असमर्थ है, वह परमात्मा को न समझ पाएगा, क्योंकि परमात्मा परम काव्य है।

यह अस्तित्व है तथ्य और परमात्मा है इस अस्तित्व में छिपा हुआ परम काव्य। यह बदलियों से गिरती हुई बूंदों की टपटप, इसमें तुम्हें अगर सिर्फ पानी ही पानी मालूम पड़े—एच. टू. ओ.—तो तुम्हें परमात्मा कहां मिलेगा ? पानी का कितना ही विश्लेषण करो, एच. टू. ओ. तो मिलेगा, परमात्मा नहीं मिलेगा। लेकिन एक और ढंग है छप्पर पर गिरती इन बूंदों को सुनने का। एक और दृष्टि है, एक और भाव-दशा है—तल्लीन होने की, तन्मय होने की—तब इस बूंदाबांदी में संगीत पकड़ में आएगा। तब इस बूंदाबांदी में तुम अनुभव करोगे कुछ एच. टू. ओ. के पार, कुछ विज्ञान के पार। तब तुम्हें इसमें पृथ्वी की प्यास भी दिखाई पड़ेगी और आकाश की उत्कंठा भी पृथ्वी की प्यास को बुझा देने की। और तुम अगर आगे चलते रहे, बढ़ते रहे, इस भाषा को और-और गहराते रहे, तो एक दिन तुम्हें दिखाई पड़ेगा : ये पृथ्वी और आकाश अलग-अलग नहीं हैं; इन्द्रधनुषों के सेतु से जुड़े हैं। यह सारा अस्तित्व इस भांति जुड़ा है कि एक ही है। एक ही स्पंदित हो रहा है अनेक रूपों में, अनंत रूपों में। जानने वाले उसे बहुत-बहुत शब्दों में कहते हैं, मगर अनुभव उसका एक है।

विज्ञान से हटो काव्य पर, फिर काव्य से छलांग लो धर्म में—ये तीन सीढ़ियां हैं। मंदिर की तीन सीढ़ियां। और तब तुम मंदिर के अंतर्गृह में प्रवेश पा सकोगे। तो मैं तुमसे कहता हूं कि सोना हो सकता है लोहा; लोहा पारस भी हो सकता है। मगर तुम हो वह लोहा। सत्संग करो तो सोना हो जाओ। सत्संग पूर्ण हो जाए तो पारस भी हो सकते हो। पारस होना तुम्हारी संभावना है। लेकिन नयी भाषा सीखनी होगी, नयी शैली सीखनी होगी, नये जीवन का ढंग, आचरण सीखना होगा। मैं उस जीवनशैली को ही संन्यास कहता हूं। वह यात्रा लोहे से पारस तक की, वही संन्यास है।

दीवानापन चाहिए इस यात्रा के लिए। बुद्धि तो दो कौड़ी की है, हृदय चाहिए इस यात्रा के लिए। बुद्धि यानी तथ्य की सीमा। हृदय यानी सत्य में प्रवेश।

मैं प्रिय का पथ अपनाता हूं
जो जी में आता गाता हूं
इतना कह सकता हूं, मुझे तो अपना ही होश नहीं है,
मेरा इसमें दोष नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख-दुखमय चिर-चंचल मन है
मानव हूं, अपूर्ण जीवन है
इसीलिए तो इस जीवन से आज मुझे संतोष नहीं है,
मेरा इसमें दोष नहीं है।

आशा अभिलाषा का धन है
सब कहते मुझमें यौवन है
तुम्हीं बता दो यौवन-मद में कौन हुआ मदहोश नहीं है,
मेरा इसमें दोष नहीं है।

इसका कहीं नहीं इति-अथ है
जीवन अमर साधना-पथ है
दुनिया जो कहना हो कह ले, मुझे किसी पर रोष नहीं है,
मेरा इसमें दोष नहीं है।

मैं प्रिय का पथ अपनाता हूं
जो जी में आता गाता हूं
इतना कह सकता हूं, मुझको तो अपना ही होश नहीं है,
मेरा इसमें दोष नहीं है।

प्रेम का मार्ग पकड़ो। तर्क नहीं, प्रीति का। प्रीति से गांठ बांधो। प्रेम के फेरे जब तक नहीं लोगे, तब तक परमात्मा से कोई संबंध न हो सकेगा। और दुनिया पागल कहेगी, यह पक्का मान लेना, पहले से ही मान लेना, जान कर चलना। कवियों की दुनिया ने सदा पागल कहा है। और ऋषियों को तो बिलकुल पागल कहा है। ऋषियों को कहा है : परम हंस। यह अच्छा शब्द है, बस; इसका अर्थ पागल होता है !

रामकृष्ण, रास्ते पर कोई जय रामजी कर लेता, वहीं खड़े हो कर नाचने लगते थे। लोग कहते, परमहंस हैं। वैसे मतलब उनका यह था कि पागल हैं...अब पागल कहना ठीक नहीं मालूम पड़ता ! रास्ते पर नाचना, यह कोई बात हुई। शिरडी के साईं बाबा अपने अंतिम क्षणों में गालियां बकते थे, पत्थर मारते थे। लोग प्रश्न पूछते, वे डंडा लेकर दौड़ते थे। लोग कहते, परमहंस हैं। लोग अच्छे-अच्छे शब्द उपयोग कर लेते हैं, लेकिन इसका मतलब उनका यह है कि पागल हैं। अब इनको होश नहीं। अब ये अपने में नहीं। जो अपने में आ गया है, वह अपने में नहीं मालूम होता !

लेकिन जो समझ सकते थे, उन्हें कुछ और दिखाई पड़ा। शिरडी के साईं बाबा की गालियों में उन्हें दिखाई पड़ा कि वे हमें जगाने की आखिरी चेष्टा कर रहे हैं। जाने के पहले आखिरी उपाय, अथक चेष्टा। ऐसे नहीं जगे तो अब पत्थर मारकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगा रहे हैं। ऐसे नहीं जगे तो अब डंडा मार कर जगा रहे हैं। बड़ी करुणा होगी ! नहीं तो कौन इतनी झंझट मोल लेता है ? एकाध दफा दे दी पुकार, बात खतम हो गयी। सुनी तो सुनी, नहीं सुनी तो तुम जानो। सुन ली तो ठीक, नहीं सुनी तो भाड़ में जाओ। लेकिन महा करुणा रही होगी इस मनुष्य में। कि छोड़ ही नहीं रहा है पीछा; कहता है कि जगा कर ही छोड़ूंगा। गाली देनी पड़ेगी तो गाली दूंगा।

कुछ लोग हैं जो सिर्फ गाली ही सुनकर जागेंगे। और किसी तरह जाग ही नहीं सकते। और तो हर चीज को वे लोरी समझते हैं। उनकी नींद और गहरा जाती है। वे और मस्ती के सपने देखने लगते हैं। इनको शायद गालियों की जरूरत है। शायद गालियां ही इन्हें चौंकाएं, तिलमिलाएं। शायद कोई पत्थर मारे तो ही इन्हें थोड़ा होश आए। कोई डंडा लेकर इनके पीछे दौड़े तो इस घबड़ाहट में शायद इनकी नींद टूट जाए।

जो जानते थे, वे तो कहेंगे कि एक अथक चेष्टा हो रही है बुद्धपुरुष की। इस दृष्टि से बुद्ध से भी ज्यादा करुणा शिरडी के साईं बाबा ने दिखाई। मगर जो नहीं जानेंगे, भीतर तो समझेंगे पागल है, बाहर से कहेंगे परमहंस है—क्योंकि डरते भी हैं कि पागल कहना ठीक नहीं, शिष्टाचार नहीं।

लोग तो तुम्हें पागल समझेंगे; लेकिन परमात्मा से तुम्हारे संबंध जुड़ने लगेंगे। और वही बात मूल्यवान है। वही बात निर्णायक है, लोग क्या समझते हैं इसका कोई मूल्य नहीं है।

दूसरा प्रश्न : ओशो, नाम जप करते-करते उम्र ढल गयी। हाथ तो कभी कुछ लगा नहीं। लेकिन जब भी तथाकथित पंडित-पुजारियों, साधु-महात्माओं से पूछा तो उन्होंने कहा—बेटा, यह कार्य जन्मों की साधना से होता है। और जीवन के अंतिम पहर में अब आप मिले हैं तो लगता है : मैं भी किन धोखेबाजों के चक्कर में पड़ा रहा ! अब मैं क्या करूं ?

गुरुदास, उनसे पूछोगे जिन्हें स्वयं नहीं मिला है, तो बेचारे वे भी क्या करें ! तुम उनकी भी तो दुविधा समझो। जिन्हें स्वयं नहीं मिला है, अपनी अस्मिता को बचाने का उन्हें भी तो तुम कुछ उपाय दोगे या नहीं दोगे ! वही उपाय है। वे तुमसे कहते हैं कि जन्मों-जन्मों की साधना से होता है, यह कोई एक दिन की बात नहीं है; कोई एक जन्म की बात नहीं है।

तिब्बत में एक बहुत प्रसिद्ध कथा है।

एक फकीर हुआ, उसकी बड़ी ख्याति फैलने लगी। ख्याति का कारण कि वह शिष्य नहीं बनाता था। लोग भी बड़े अजीब हैं ! किस बात से ख्याति फैलाने लगेंगे, कुछ कहना कठिन है। शिष्य नहीं बनाता था, तो उन्होंने कहा, अहाह ! महात्मा हो तो ऐसा ! अहंकार बिलकुल है ही नहीं। किसी को शिष्य बनाता ही नहीं। यह भाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही नहीं है कि मैं जानता हूं और तुम नहीं जानते, तो शिष्य कैसे बनाए ? शिष्य तो जो बनाते हैं, वे अहंकारी हैं। और यही बात वह फकीर लोगों से कहता भी था कि मुझे कोई अहंकार नहीं है, तो कैसे शिष्य बनाऊं ? कौन शिष्य, कौन गुरु ! बात जंचती। शिष्य जो बनने आते थे, उनको भी बड़ी प्रसन्नता होती यह बात जानकर कि हम में और गुरु में कोई भेद ही नहीं है। यही तो सुनना चाहते हैं लोग। झुकना कौन चाहता है ! और यह आदमी बड़ा प्यारा है, झुकने की बात ही नहीं करता। कोई झुकना भी चाहे तो धक्के देकर निकाल देता था बाहर फकीर कि भाग ज़ाओ, मैं किसी को शिष्य नहीं बनाता।

जितना भगाता उतने लोग और आते। लोग अजीब हैं, उनके अपने गणित हैं ! भगाता है तो जरूर इसको हीरा मिल गया है। गांठ बांधे बैठा है, देना नहीं चाहता। भीड़ बढ़ती चली गयी। लोग बहुत प्रार्थनाएं किए कि किसी को तो कान फूंक दो, किसी को ज्ञान दे दो। तुमने पा लिया, एक दिन चले जाओगे, कुंजी हमें सौंप जाओ। मगर वह था कि अड़ा ही रहा।

आखिर धीरे-धीरे लोग थक गये। एक सीमा होती है धैर्य की ! लोग धीरे-धीरे आना बंद भी हो गये। सिर्फ एक आदमी रुका रहा। वह भी इसलिए रुका रहा कि उसे कोई और काम था भी नहीं कहीं, यहां फकीर की थोड़ी सेवा कर देता था, खाना-पीना मिल जाता था फकीर के पास, कपड़ा मिल जाता था, सुविधा थी।

एक दिन फकीर ने अचानक सुबह ही उससे कहा कि उठ-उठ, अब देर न कर, भाग कर नीचे जा मैदान में और जिनको भी शिष्य बनना हो, जल्दी ले आ ! अब समय खोने को नहीं है। उसको तो भरोसा ही नहीं आया कि जिसने जीवन-भर किसी को शिष्य नहीं बनाया, वह कह रहा है कि भाग, जा, किसी को भी ले आ ! उसने पूछा कि आप क्या कह रहे हैं ? होश में हैं ? आपका दिमाग तो खराब नहीं हो गया ? बड़े-बड़े पंडित, बड़े-बड़े बुद्धिमान् आए और आपने धक्का दे कर निकलवा दिये—मैंने ही धक्का देकर निकाले ! अब आप कहते हैं, किसी को भी ! पात्र-अपात्र का कोई हिसाब नहीं करना है ! उसने कहा, अब तू समय खराब मत कर। जो भी आने को राजी है, ले आ। पात्र-अपात्र की बात ही मत उठाना।

कहा फकीर ने तो वह गया। गांव में जाकर डुंडी पीट दी कि भाई, जिसको भी शिष्य होना हो...। बहुत लोग आते थे शिष्य होने—शायद इसी आशा में आते थे कि वह बनाएगा तो है ही नहीं, तो यह मौका भी क्यों चूको ! कहने को रह जाएगा कि गये तो हम भी थे ! वह उस दिन डुंडी पीटी शिष्य ने तो बामुश्किल शाम होते तक केवल दस-बारह आदमी इकट्ठे कर पाया—बामुश्किल। उसमें भी करीब-करीब सब बेकार थे। एक की पत्नी मर गयी थी, वह खाली था, उसे कुछ सूझ नहीं रहा था क्या करूं, क्या न करूं, उसने कहा चलो यही ठीक, कुछ गोरखधंधा रहेगा ! एक को नौकरी नहीं मिलती थी, वह बेकार था बहुत दिन से, उसने कहा—चलो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाई, मैं भी आता हूं। कोई सिर्फ जिज्ञासावश साथ हो लिया कि देखें ! ऐसे दस-बारह आदमी इकट्ठा करके सांझ तक वह लौटा।

वह बड़ा चिन्तित था मन में कि इनको देख कर गुरु क्या कहेगा ? इनमें एक भी पात्र नहीं है। किसी की पत्नी मर गयी, किसी का धंधा नहीं चल रहा है, किसी की नौकरी नहीं लग रही है; कोई जुए में हार गया है तो दुखी है; किसी का दीवाला निकल गया है तो वह आत्महत्या की सोच रहा था, उसने सोचा, चलो, आत्महत्या करने के पहले मंत्र ही ले लो, दीक्षा ही ले लो। मरना तो है ही। परमात्मा के सामने भी कुछ कहने को रह जाएगा। इस तरह के फिजूल के लोग। इनको गुरु क्या ज्ञान देगा ? और गुरु ने बड़ी प्रसन्नता से उनका स्वागत किया, एक-एक को अंदर गुफा में ले जाकर, जो उसकी कुंजी थी, जिससे उसने पाया था, वह देने लगा। वे बारह ही आदमी बड़े चौंके। आखिर उन सबने इकट्ठे होकर प्रार्थना की कि हम यह पूछना चाहते हैं कि हम में से पात्र कोई भी नहीं है—हम खुद ही जानते हैं अपनी अपात्रता; हम एक-दूसरे को भी भलीभांति जानते हैं ! बड़े-बड़े पात्र आए, आपने इनकार कर दिये, आज हम अपात्रों को बुला कर आप बांट रहे हैं !

उस गुरु ने कहा, अब तुम नहीं मानते तो मैं सत्य बात तुमसे कह दूं। जब लोग मेरे पास शिष्य होने आते थे, तो मेरे पास कुछ देने को ही नहीं था। मुझे खुद ही नहीं मिला था। तो अपनी रक्षा करने का एक ही उपाय था कि मैं कहता था, मैं कोई शिष्य नहीं बनाता। मैं कोई अहंकारी नहीं हूं। शिष्य बनाता तो क्या खाक बनाता ! मेरे पास देने को कुछ नहीं था। इसलिए मैं शिष्यों की पात्रता की बात करता था कि जब आएगा कोई पात्र, उसको बनाऊंगा। सचाई उल्टी थी, पात्र मैं ही नहीं था। अब मैं पात्र हूं। मेरा पात्र लबालब भरा है। उसके रस से भर गया है। अब सवाल यह नहीं है कि तुम पात्र हो या नहीं ? अंजुली में भर कर पी लो। मिट्टी के बर्तन लाओ कि सोने के बर्तन लाओ, तुम जैसे भी आओ, स्वीकृत हो। आज मेरे पास देने को है। आज मैं कोई शर्त नहीं लगाता। आज बेशर्त दूंगा। और मेरे पास समय भी कम है। बस तीन दिन मुझे जीना है और। मेरी नाव आ लगी किनारे, और जल्दी ही मुझे दूसरे किनारे की यात्रा पर निकल जाना है। इसके पहले कि मैं जाऊं, जितनों के पात्र भर सकूं, भर दूं। अब मैं यह क्या पूछूं कि तुम्हारा पात्र सोने का, कि पीतल का, कि लोहे का, कि मिट्टी का : कि गरीब का, कि अमीर का; कि सोना चढ़ा, हीरे जड़ा, कि दो कौड़ी का ? कि तुम्हारे पास पात्र ही नहीं है तो तुम अपनी अंजुली ही बना लो ; अगर अंजुली भी न बना सको तो अपना मुंह ही खोलो, मैं मुंह में ही सीधा ढाल दूंगा, मगर पी लो !

गुरुदास, तुम जिनके पास गये और तुमने उनसे कहा कि इतना नाम जप कर रहा हूं, उम्र बीत गयी, कुछ हो नहीं रहा है, तो तुम उनकी भी मुसीबत समझो। वे करें क्या ? या तो वे कहें कि नामजप से कुछ होता नहीं। तो उनका सारा धंधा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिर जाए। नामजप पर ही उनका सारा धंधा टिका हुआ है। या वे कहें कि भाई, हमें पता नहीं, किसी जानने वाले जागे पुरुष से पूछो, तो भी उनका धंधा गिर जाए। क्योंकि तुम तभी तक उनके पास जाओगे जब तक वे दावा करते हैं कि वे जानने वाले हैं। दोनों बातें वे नहीं कर सकते। तो तीसरी ही बात बचती है कि तुम अभी पात्र नहीं हो; और पात्रता जन्मों-जन्मों में मिलती है। यह कोई एक दिन का काम नहीं है।

मछली मारने के शौकीन ढब्बू जी एक दिन चंदूलाल को भी अपने साथ नदी के किनारे ले गये। एक बंसी उन्हें भी पकड़ा दी। बेचारे चंदूलाल क्या जानें मछली मारना ? तीन-चार घंटे खूब भागदौड़ की, पसीना-पसीना हो गये। अब शाम को बिलकुल अंधेरा हो गया, तब वे अपनी रोनी सूरत लिये ढब्बू जी के पास आकर हताश स्वर में बोले, यार, क्या बताऊं, एक भी मछली नहीं फंसी। मैं तो शर्म से पानी-पानी हुआ जा रहा हूं। अरे, इसमें शर्म से पानी-पानी होने की क्या बात है। ढब्बू जी ने आश्चर्य से आंखें फाड़ कर जवाब दिया। मुझे देख कर कुछ शिक्षा लो। पिछले बीस वर्षों से मछली मार रहा हूं, मगर आज तक एक भी नहीं फंसी ! तुम भी गजब के कायर हो, एक ही दिन में हार मान गये !

तुमने जिनसे पूछा था, गुरुदास, उनकी आंखों में झांक कर तो देख लेते। मछली वहां फंसी ? उनका हाथ तो हाथ में लेकर देख लेते। उसमें तरंग है ईश्वर-आनंद की ? उनके पास बैठ कर चुपचाप, शून्य होकर, मौन होकर थोड़ा उनको पीते, स्वाद लेते। अमृत का वहां स्वाद है ? आंख बंद करके जरा उनकी तरफ देखते। उस तरफ से आती रोशनी अनुभव होती है ? प्रकाश की कोई धारा तुम्हारे हृदय में उतरती है ? फिर पूछना था। तुम उनसे पूछ रहे थे जिनको खुद ही न मिला था। वे बहाने न खोजें तो क्या करें ? वे तुम्हीं को जिम्मेवार न ठहराएं तो क्या करें ?

और इसीलिए स्वभावतः जब तुम मेरे पास आए हो तो तुम्हें हैरानी लगती होगी, क्योंकि मैं कहता हूं : परमात्मा एक क्षण में मिल सकता है। क्योंकि परमात्मा कल मिले, यह बात ही फिजूल। परमात्मा तो सदा आज है। कल तो परमात्मा के लिए है ही नहीं। कल तो हमारे लिए है, उसके लिए नहीं। परमात्मा के लिए तो सिर्फ आज का ही अस्तित्व है, कल का कोई अस्तित्व नहीं है।

तुम कल परमात्मा से मिलना चाहो और उसके लिए कल का कोई अस्तित्व नहीं, तो मिलन होगा कैसे ?

परमात्मा अभी है। आकाश से बरसती इस वर्षा में, वृक्षों की हरियाली में, इस सन्नाटे में, इस बूंदाबांदी में, इस पूरी मौजूदगी में, मेरी मौजूदगी में; मेरे बोलने में, तुम्हारे सुनने में; यह हमारे हृदय की धड़कनों में, हमारी श्वासों में वही मौजूद है। कल की बात क्यों ? परमात्मा कुछ दूर है कि उसे पाने के लिए चलना पड़ेगा ? परमात्मा पास से भी पास है। तुम्हारे प्राणों से भी ज्यादा पास है। तुम्हारे हृदय की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धड़कन भी थोड़ी दूर है, परमात्मा उससे भी ज्यादा पास है। क्योंकि परमात्मा है वह साक्षी जो तुम्हारे हृदय की धड़कन को देखता है। परमात्मा तुम्हारी सांसों से भी तुम्हारे ज्यादा पास है, क्योंकि परमात्मा है वह साक्षी जो श्वास का भीतर आना-बाहर जाना देखता है।

इसीलिए तो बुद्ध ने विपस्सना ध्यान का आविष्कार किया। अपनी श्वास को देखते रहो; बस इतनी ही बुद्ध ने प्रक्रिया दी जगत को। बुद्ध का सारा सार विपस्सना है। विपस्सना का अर्थ होता है : श्वास को देखना; प्रश्वास को देखना। श्वास भीतर गयी, देखना; श्वास बाहर गयी, देखना। सिर्फ देखते रहना, कुछ करना नहीं। न राम-राम जपना, न ओंकार जपना, न गायत्री, न नमोकार, कुछ भी नहीं। सिर्फ श्वास भीतर गयी, होशपूर्वक इसे देखना। साक्षी। फिर श्वास बाहर गयी, इसे देखना। फिर जल्दी ही तुम्हें दो और बातें दिखायी पड़ेंगी। श्वास जब भीतर जाती है तो दिखाई पड़ेगी, बाहर जाती है तो दिखाई पड़ेगी—यह प्राथमिक चरण। दूसरे चरण में, जब गहराई देखने की बढ़ेगी, तो तुम्हें यह भी दिखाई पड़ेगा : श्वास भीतर जाती है और फिर क्षण भर को ठहर जाती है। श्वास बाहर जाती है और क्षण भर को ठहर जाती है। फिर तुम्हें दो चीजें दिखाई पड़ने लगेंगी और—श्वास का आना और जाना और श्वास का भीतर ठहरना और बाहर ठहरना। वह जो ठहराव है जब श्वास बाहर की बाहर रह गयी और श्वास भीतर की भीतर रह गयी, छोटा-सा है, पल मात्र का है, लेकिन उसी पल में पलक खुलती है। उसी पल में द्वार खुलता है। उसी पल में साक्षी का अनुभव होता है। क्योंकि श्वास भी देखने को नहीं बचती, देखने वाला स्वयं को देखता है। जब सब विषय-वस्तु खो जाते हैं, सब दृश्य विलीन हो जाते हैं, तो द्रष्टा अपने को ही अनुभव करता है। उस अनुभूति का नाम परमात्मा है।

तुम नामजप करते-करते उम्र बिता दिये, मैं तुमसे कहता हूं : तुम अनेक उम्र बिताओ तो भी कुछ न होगा। नाम का जप नहीं करना होता। क्या करोगे नाम-जप में ? राम-राम, राम-राम, राम-राम दोहराते रहोगे। यंत्रवत् हो जाएगा ! जल्दी ही दोहराते-दोहराते आदत हो जाएगी। फिर लोग दुकान पर बैठ कर सामान तौलते रहते हैं, डांडी भी मारते रहते हैं और राम-राम भी जपते रहते हैं—मुख में राम बगल में छुरी। कुछ ऐसे ही थोड़े लोगों ने यह कहावत बना ली होगी। यह भारतीय कहावत है। इस धर्मप्राण देश में बहुत अनुभव के बाद यह कहावत बनी होगी—'मुख में राम बगल में छुरी।' छुरी पर धार भी देते रहते हैं और राम-राम, राम-राम भी जपते रहते हैं।

मैंने तो सुना है, एक जौहरी ने अपनी दुकान पर यह हिसाब बना लिया था—बड़ी दुकान थी—जैसे ही ग्राहक आता...दुकानदार की बड़ी प्रसिद्धि थी उस जौहरी की कि बड़ा भक्त है ! भगत जी ही लोग उनको कहते थे ! और भगत जी वे थे। मगर वैसे ही भगत जी जैसे बगुला भगत होते हैं। बगुला देखा है कैसा खड़ा होता है ? शुद्ध खादी के वस्त्र पहने हुए बगुला खड़ा होता है। और एक टांग पर खड़ा होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—बगुलासन ! बड़े-बड़े योगी मुश्किल से साध पाते हैं। एक टांग पर खड़ा रहता है, बिलकुल थिर—हिलता ही नहीं, डुलता ही नहीं। हिले-डुले तो मछली फंसे कैसे ! हिले-डुले तो पानी हिल-डुल जाए, पानी हिल-डुल जाए तो बगुले का बनता हुआ प्रतिबिम्ब हिल-डुल जाए, मछली संदिग्ध हो जाए कि मामला कुछ गड़बड़ है, भगत जी खड़े हैं ! तो भगत जी ऐसे खड़े रहते हैं कि पानी हिलता ही नहीं। जब कुछ भी नहीं हिलता और गतिमान नहीं होता तो मछली निश्चिंत गुजरती रहती है। उसी में मछली फंसती है।...तो वे भगत जी बड़े जाहिर भगत जी थे। मछलियों को कुछ पता नहीं था। मछली यानी ग्राहक। वे ग्राहक को देख कर ही जपने लगते थे एकदम। कभी कहते, राम-राम, राम-राम, राम-राम... ! राम-राम का अर्थ था : बेकाम; किसी मतलब का नहीं है, इसको जाने दो। वे अपने नौकर-चाकरों को कह रहे थे, बेकार मेहनत मत करो, मैं इसको भलीभांति जानता हूं। राम-राम करो ! समय खराब मत करो। इससे कुछ निकलेगा नहीं। इस पर कुछ है भी नहीं। तो जब भगत जी राम-राम कहते, दुकान पर जो उनके नौकर चाकर थे, टाल-टूल करके खिसका देते ग्राहक को।

किसी ग्राहक को देख कर भगत जी कहते : हरे-हरे ! हरे-हरे ! मतलब : लूटो। लूटो ! हरि का मतलब होता है : लूटो। लुटेरा। हरण करो, छोड़ो मत। काटो इसको ! ये उनके कोड शब्द थे।

राम-राम यानी बेकाम। जाने भी दो ! छुटकारा पाओ, राम-राम करो। और हरि-हरि, जाने मत देना ! अब आ ही गया है तो छूट न जाए, फांसो। ऐसे उन्होंने मंत्रों के भी अर्थ तय कर रखे थे। जब वे एकदम मंत्रजाप करने लगते, उनके नौकर-चाकर सब समझ जाते क्या करना है। कितना दाम बताना है, कितना नहीं बताना है। दुगुना बताना है कि तीन गुना बताना है। कम करना है कि नहीं करना है। इस सब के धार्मिक मंत्र तय कर रखे थे। कभी गायत्री जपने लगते ...मगर ये सब प्रतीक थे।

तुम राम-राम जप सकते हो—यंत्र की भांति तुम्हारी जीभ दोहराए जाए, तुम्हारा कंठ दोहराए जाए, इससे कुछ भी न होगा, होश चाहिए। अगर राम-राम भी जपने में तुम्हें रस हो, तो ख्याल रखना, राम-राम जपना और भीतर साक्षीभाव रखना कि मैं राम-राम जप रहा हूं। राम कहा, राम कहा, भीतर देखते जाना। जैसे बुद्ध ने कहा : श्वास देखना, ऐसे तुम राम-राम देखना। मगर उल्टा राम-राम में कहां उलझना ? यह तो ज्यादा आसान श्वास है। क्योंकि अपने-आप चल रही है। राम-राम तो चलाना पड़ेगा। और राम-राम चलाने में थोड़ा खतरा भी है। जैसे कार ड्राइव कर रहे हो और राम-राम जपने लगे और मन राम-राम पर लगाया, तो एक्सीडेंट हो सकता है। साइकिल पर चले जा रहे हो और राम-राम कर रहे हो, तो एक्सीडेंट हो सकता है। तुम राम-राम जप रहे हो और ट्रक वाला हार्न बजा रहा है, तुम्हें सुनाई ही न पड़े। जीवन में नुकसान हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए लोगों ने फिर राम-राम जपने के लिए अलग इंतजाम कर लिया। घड़ी-आधा घड़ी निकाल ली, सुबह नहा-धोकर बैठ गये अपने एक कोने में, मंदिर बना लिया घर में, वहां राम-राम जप लिया। जिन्दगी से राम-राम का कोई संबंध न रहा। एक खंड में बना लिया।

नहीं, बुद्ध की प्रक्रिया ज्यादा वैज्ञानिक है। श्वास का सहजभाव से बोध रहा आए। तुम चकित होओगे कि जैसे-जैसे तुम श्वास को देखोगे वैसे-वैसे विचार कम हो जाएंगे। श्वास और विचार में एक अनिवार्य संबंध है। अब तो इस बात से वैज्ञानिक भी राजी हैं कि अगर कोई व्यक्ति अपनी श्वास को देखे, तो उसके विचार कम हो जाते हैं। उसी मात्रा में। जिस व्यक्ति के भीतर बहुत विचारों का ऊहापोह होता है, उसे श्वास देखना बहुत कठिन पड़ती है, बहुत मुश्किल पड़ती है। वे दोनों विपरीत प्रक्रियाएं हैं। दोनों का कोई सह-अस्तित्व नहीं हो सकता।

इसलिए, गुरुदास, मैं तो तुमसे कहूंगा : नामजप छोड़ो; श्वास-प्रश्वास पर ध्यान को जमाओ। अब तुम उसी को रामजप समझो। क्योंकि जो देख रहा है, वह राम है। वह जो साक्षी है, वही राम है। और तब यह घटना इसी जन्म में घटेगी। क्यों अगले जन्म में ? क्यों आगे पर टालना ? और यह घटना अभी घट सकती है। सब निर्भर करता है तुम्हारी त्वरा, तुम्हारी तीव्रता, तुम्हारी सघनता, तुम्हारी समग्रता पर।

तुम पूजा-पाठ में लगे रहे ! पूजा-पाठ में करोगे क्या ? मंत्र पढ़ोगे, मांग करोगे—यह मिल जाए, वह मिल जाए—कोई ऐसे मुफ्त तो...नामजप करता नहीं ! लोग प्रार्थना ऐसे ही तो नहीं करते अहेतुक, उसमें हेतु होते हैं। उनकी प्रार्थना में भी वासना भरी होती है।

मैंने सुना है, एक आदमी मरा। वह बहुत नाराज हुआ। क्योंकि उसके साथ ही उसका साझीदार भी मरा—दोनों एक कार-एक्सीडेंट में मरे तो साथ ही मरे—देवदूत लेने आए तो इस आदमी को जो कि प्रार्थना, पूजा-पाठ में तल्लीन रहता था, कभी-कभी अखण्ड पाठ करवा देता था—मुहल्ले भर में शोरगुल मचावा देता था लाउडस्पीकर लगवा कर—सत्यनारायण की कथा करवा देता था, प्रसाद बंटवाता था, मंदिर नियम से जाता था, तिलक लगाता था, जनेऊ धारण करता था, सब तरह से जो धार्मिक आदमी को करना चाहिए सब करता था; और इसका जो साझीदार था, इससे बिलकुल उल्टा था। महा नास्तिक। न कभी ईश्वर का नाम ले, न एक पैसा दान दे; न पूजा, न पाठ, कुछ भी नहीं। मंदिर के भीतर तो वह कभी देखा ही नहीं गया था। उसको देवदूत ले जाने लगे स्वर्ग की तरफ और इसको ले जाने लगे नर्क की तरफ। इसने कहा, ठहरो भाई, कुछ भूल-चूक हो रही है ! तुम्हारे दफ्तर की कुछ भूल है। लगता है तुम गलती कर रहे हो। मुझे ले जाना चाहिए स्वर्ग की तरफ, इसे नरक की तरफ, यह तुम क्या कर रहे हो ? उन्होंने कहा कि कोई भूल-चूक नहीं है। अभी परमात्मा का दफ्तर सरकारी दफ्तर नहीं हुआ। अभी वहां भूल-चूक नहीं होती। हालांकि जल्दी ही खतरा है ! क्योंकि दिल्ली से मर-मर कर जितने लोग पहुंच रहे हैं, उन सबको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी नौकरी पर लगाना पड़ रहा है, कुछ-न-कुछ काम देना पड़ रहा है, अब वे सब गड़बड़झाला करेंगे, मगर अभी सब ठीक चल रहा है !

उसने कहा कि मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता। मुझे पहले परमात्मा के सामने मौजूद किया जाए। मुझे पूछना है। जिंदगी मैंने नामजप में बितायी, पूजा-पाठ में बितायी, और यह लफंगा, यह मेरा साझीदार है, यह मेरा मित्र है, यह एकदम नास्तिक, इसको स्वर्ग, मुझको नर्क ! पहले परमात्मा से पूछूंगा। आज दो-दो बातें हो जाएं ! जिंदगी-भर रोया, गिड़गिड़ाया, उसका यह फल ! रात-दिन पुकारा, सोते-जागते पुकारा, उसका यह फल !

उसको परमात्मा के सामने ले जाना पड़ा—उसने शोरगुल इतना मचाया !

उसने पूछा परमात्मा से कि यह क्या मामला है ? यह कैसी ज्यादती ? मैंने तो सुना था, देर होती है अंधेर नहीं होता, अब तो दिखता है कि अंधेर भी होता है। यह मेरे जीवन-भर के पुण्य कर्मों का फल मुझे मिल रहा है—नर्क ! और इसको किस चीज का फल मिल रहा है ? मैंने तुम्हारी प्रार्थना नहीं की, पूजा नहीं की ? व्रत-नियम-उपवास नहीं किये ? परमात्मा ने कहा : सब किये; इसीलिए तुम्हें नरक भेज रहा हूं। तुमने जिंदगी-भर मुझे चैन से न रहने दिया। मेरी खोपड़ी खाते रहे। रात-दिन बकवास लगा रखी थी, मेरी खोपड़ी में भनभनाते रहे। मैं तुमको यहां स्वर्ग में नहीं टिकने दूंगा। अगर तुमको यहां रहना है, तो मैं नर्क चला ! तुम रहो, करो तुम अखण्ड पाठ, लगाओ लाउडस्पीकर और जो तुम्हें करना हो करो ! और उसके साझीदार से कहा कि भाई आ, तू भी मेरे साथ चल ! अब इसी को रहने दे स्वर्ग में। या तो तुम रहोगे यहां या मैं रहूंगा।

मुझे बात में अर्थ समझ आता है। बात ठीक है।

तुम करते भी हो पूजा-पाठ, तो उसके पीछे कुछ वासना है, कुछ कामना है। उसी से चूकते हो। फिर जन्मों-जन्मों चूकोगे। फिर तुम्हारे पंडित-पुजारी ठीक ही कहते हैं कि बेटा, यह मामला कठिन है। वे तो जनम-जनम कहते हैं, मैं तुमसे कहता हूं : अगर वासना है तुम्हारी प्रार्थना में, तो अनंत जन्मों में भी उपलब्धि नहीं हो सकती। वासना-शून्य होनी चाहिए प्रार्थना। प्रार्थना अहोभाव होनी चाहिए, आनंद होनी चाहिए; धन्यवाद, कृतज्ञता—मांग नहीं।

यत्न से कितने दबाए
था जिन्हें अब तक छिपाए
आज मेरे गान बरबस
कंठ में फिर उतर आए
आज मैंने रख दिया है हृदय अपना चीर
मेरे गान तुम मत सुनो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख मेरी चिर-विकलता
देख पग-पग पर विफलता
देख मेरे पलक भीगे
देख मेरा हृदय जलता
हा, कहीं तुम हो न जाओ आज स्नेह-अधीर
मेरे गान तुम मत सुनो।

मुख मलिन, निःशब्द, कातर
देख मेरा वेष जर्जर
देख मुरझे हृत्कमल-दल
देख यह सूखा हुआ सर
हा, छलक आए न नयनों में तुम्हारे नीर
मेरे गान तुम मत सुनो।

मन विरागी राग से भर
कर रहा प्रतिध्वनित अंबर
आज अधरों की हंसी में
व्यंग का आभास पाकर
हा, न हो उट्ठे तुम्हारे हृदय में फिर पीर
मेरे गान तुम मत सुनो।

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

रोओ मत, गिड़गिड़ाओ मत, मांगो मत। अपनी पीड़ा को उछालो मत। अपने दुख-दर्द की बात क्या करनी ? अपने कांटों की गिनती क्या करवानी ? अपने फूल चढ़ाओ। तुम्हारे जीवन में जो आनंद के क्षण हों, वे समर्पित करो। और आनंद के क्षण कुछ कम हैं ! चांदनी रातें कुछ कम हैं ! सुबह उगते हुए सूरज का आनंद, सांझ डूबते हुए सूरज का आनंद, पहाड़ों-पर्वतों का सौन्दर्य—यह सब कुछ कम है ! यह जीवन इतना अपूर्व अवसर, इतना अमोलक रत्न, इसके लिए धन्यवाद नहीं दोगे ? रोते हो, गिड़गिड़ाते हो, छोटी-छोटी बातें उठाते हो, उसी में तुम्हारी प्रार्थना कलुषित हो जाती है। उसी में तुम्हारी प्रार्थना पत्थरों में दब जाती है, उसके पंख टूट जाते हैं। प्रार्थना में पंख होते हैं, जब वासनामुक्त होती है। जब तुम कुछ मांगते नहीं परमात्मा से, तब तुम पर वर्षा होगी उसके दानों की। मांगोगे, चूकोगे, नहीं मांगोगे, बहुत कुछ पाओगे।

गुरुदास, जरूर तुम मांगते रहे होओगे। नहीं तो नामजप किया किसलिए ? और यह भी क्या पूछना कि कब हाथ लगेगा ! क्या हाथ लगना है ? क्या हाथ लगाने का इरादा रखते हो ? कुछ जरूर भीतर तलाश चल रही है—छिपी, सूक्ष्म।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां की न हो चाहे, परलोक की हो, मगर कुछ तलाश चल रही है, कुछ-न-कुछ पाना चाहते हो। और जब तक पाना चाहते हो तब तक मन सांसारिक है। जब तक पाना चाहते हो तब तक संसार के हिस्से हो। तब तक तुम्हें धर्म का स्वाद ही नहीं लगा। अब पाने की बात ही छोड़ो ! पाना क्या है ? मिला ही हुआ है। जो मिलना था, वह तुम्हें दिया ही गया है। जागो और देखो और भोगो और आनंदित होओ। नाचो, उत्सव मनाओ।

मैं तो प्रार्थना को तुम्हारे लिए उत्सव का रूप देना चाहता हूं। मगन होकर नाचो। जितना दिया है इतना है कि हमारे सब धन्यवाद छोटे हैं। लेकिन लोग शिकायत करते हैं। लोग मंदिरों में जाकर शिकायत ही करते हैं। शायद ही कोई कभी आभार प्रगट करने जाता हो। और शिकायतें अधार्मिक आदमी का लक्षण हैं। आभार धर्म का सूचक है।

तुम पूछते हो, 'नामजप करते-करते उम्र ढल गयी। हाथ तो कभी कुछ लगा नहीं।' हाथ कुछ लगना चाहिए था, वहीं चूक हो रही है। और पूछते हो, 'लेकिन जब भी तथाकथित पंडित-पुजारियों, साधु-महात्माओं से पूछा, तो उन्होंने कहा—बेटा, यह कार्य जन्मों की साधना से होता है।' वे बेचारे भी क्या करें ? सांत्वना दी तुम्हें। तुम्हारी पीठ थपथपायी, कहा कि किए जाओ, जरूर पाओगे, मगर इतनी जल्दी नहीं होता। धीरज रखो, मिलेगा, जन्मों-जन्मों की साधना से मिलता है। उन्हें भी कुछ पता नहीं कि वासना हो तो प्रार्थना कभी पूरी नहीं होती—जन्मों-जन्मों में भी पूरी नहीं होती। और वासना न हो तो उसी क्षण पूरी है। फिर प्रार्थना अधूरी होती ही नहीं। वासना हो तो सदा निष्फल, वासना न हो तो सदा सफल।

इस उल्टे गणित को ख्याल में ले लो, इस विरोधाभास को ख्याल में ले लो।

परमात्मा के द्वार पर भिखमंगे की तरह मत जाना। वहां सम्राटों का स्वागत है। भिखमंगे तो सब जगह दुरदुराए जाते हैं : आगे हटो, आगे बढ़ो ! और तुम परमात्मा के सामने भिखारी की तरह जाते हो। उसे धन्यवाद देने जाओ ! यह कहने जाओ कि कितना दिया तूने—अपार, अकूत; मेरी सामर्थ्य से बहुत ज्यादा; मेरी पात्रता से बहुत ज्यादा। फिर तुम देखो कि कैसा सोना बरसता है तुम्हारे ऊपर, कि कैसी झड़ी लग जाती है हीरे-जवाहरातों की !

और ख्याल रखना, सोना, हीरे-जवाहरात मैं प्रतीक की तरह उपयोग कर रहा हूं। नहीं तो बीच-बीच में आंख खोलकर देखो कि अभी तक झड़ी नहीं लगी ? कंकड़-पत्थर भी नहीं दिखायी पड़ रहे हैं, हीरे-जवाहरात कहां ! लोहा तक नहीं गिर रहा है, सोना कहां !

और ऐसा भी मत सोचना कि चलो यही सही, अगर वासना छोड़ने से प्राप्ति होती है तो वासना भी छोड़ देंगे। तो वासना तुमने छोड़ी ही नहीं। अब यह प्राप्ति के लिए ही वासना छोड़ी तो क्या खाक वासना छोड़ी !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी बात ठीक से समझ लेना, चूकने की बहुत संभावना है।

विवेकानंद अमरीका में बोलते थे तो उन्होंने बाइबिल का प्रसिद्ध वचन उद्धृत किया कि धन्य हैं वे जो श्रद्धालु हैं, क्योंकि श्रद्धा की सामर्थ्य अपार है। श्रद्धा तो पहाड़ों को भी आज्ञा दे तो पहाड़ चल पड़ें। एक बुढ़िया ने सुना। उसके घर के पीछे ही पहाड़ था। वह उस पहाड़ से परेशान थी। क्योंकि पहाड़ के कारण हवा भी नहीं आती थी, पहाड़ की चट्टानें तपती थीं तो गर्मी भी दिन-रात बनी रहती थी। और उसने कहा, यह, बाइबिल तो मैं बहुत पढ़ती थी, यह वाक्य भी कई दफे आया—'फ़ेद कैन मूव माउन्टेन्स', मगर मैंने कभी इसका उपयोग ही नहीं किया। मैं भी मूढ़ हूं ! इस आदमी ने अच्छा याद दिला दिया, आज ही जाकर निपटारा कर देती हूं !

गयी। खिड़की से आखिरी बार खोल कर पहाड़ देखा कि अब तो आखिरी बार है, एक बार और देख लो ! फिर तो गया सो गया ! खिड़की बंद की, आंख बंद करके बैठी और कहा, हे पहाड़, श्रद्धापूर्वक कहती हूं, परिपूर्ण श्रद्धा से कहती हूं कि हट जा, यहां से सदा के लिए हट जा ! हजारों कोस दूर हट जा कि तेरी खोज-खबर भी करना चाहूं तो तेरा पता न चले ! फिर एक दो-एक मिनट बैठी रही—ज्यादा देर तो बैठ भी नहीं सकती थी—फिर उत्सुकता पकड़ने लगी कि हटा कि नहीं ? फिर खिड़की खोली। पहाड़ वहीं-का-वहीं ही था। और उस बुढ़िया ने क्या कहा, मालूम है ? उसने कहा, मुझे पहले ही से पता था कि कुछ हटने वाला नहीं है। अरे, पहाड़ क्या, एक पत्थर भी हटनेवाला नहीं है। सब बकवास है।

पहले से पता था ! तो फिर श्रद्धा कैसी ? श्रद्धा का तो अर्थ ही होता है कि कहीं कोई संदेह की कोर भी न थी। यह श्रद्धा नहीं है। यह श्रद्धा का शोषण है।

मेरे पास लोग आते हैं, मैं उनसे कहता हूं कि प्रार्थना पूरी होगी मगर तुम वासना छोड़ो। तो वे कहते हैं, वासना छोड़ दें तो फिर सच में पूरी होगी ? वासना तक छोड़ने को राजी हैं—अगर प्रार्थना फिर पूर्ण हो जाए। मैं उनसे पूछता हूं, पूर्ण...फिर तुम क्या चाहते हो ? फिर क्या बचा ? जब वासना छोड़ दी तो पूर्ण होने में तुम्हारी क्या अभिलाषा है ? वही-की-वही वासना।

एक सज्जन हैं, उनको बेटा नहीं होता। वे कहने लगे, बहुत दिन हो गये प्रार्थना करते; पूजा, यज्ञ-हवन, सब करवा डाले; जब सब से थक गया तब आपके पास आया हूं। मेरे पास तो मरीज आते ही तब हैं जब कहीं और कोई चिकित्सा उनकी नहीं कर पाता। असाध्य रोगी ही यहां पहुंचते हैं। क्योंकि जब तक कोई और चिकित्सक मिल जाए तब तक तो वहीं निपट लेना चाहते हैं, क्योंकि यहां झंझट का मामला है ! यहां मामला इतना झंझट का है कि शायद बीमारी तो छूट जाए, लेकिन औषधि पकड़ जाए। तो फिर औषधि छोड़ना बहुत मुश्किल है। तो वे बहुत जगह हो-हवा कर, सब जगह हार कर, उन्होंने कहा, फिर सोचा कि अब आखिरी आपके पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी जा कर देख लूं। तो मैंने कहा, अगर यह वासना छोड़ दो, तो ही प्रार्थना पूरी हो। एकदम खुश हो गये। बाग-बाग हो गये। चेहरा मुस्करा गया। कहा कि आपने भी ठीक बताया। तो यही वासना बाधा बन रही ! अब तो मैं कहूं, जिंदगी-भर हो गयी, प्रार्थना करता, पूजा करता, हवन, पाठ, एक बेटा पैदा नहीं होता। और दूसरी तरफ लोग हैं कि संतति-नियमन करते हैं तो भी बच्चे पैदा हो रहे हैं ! गोलियां ले रहे हैं बच्चों को रोकने की, गोलियों को धोखा देकर बच्चे पैदा हो रहे हैं ! और एक मैं हूं कि मरा जा रहा हूं... । आपने बताया, किसी ने नहीं बताया कि यह वासना छोड़ दो। तो ठीक है, अब यह वासना छोड़ देता हूं। फिर जाते-जाते बोले कि फिर तो बच्चा होगा न !

आदमी का मन ऐसा धोखेबाज है कि किस-किस तरह से अपने को धोखा दे ले, कहना कठिन है। क्या पाना चाहते हो ? जो पाना है, वह मिला हुआ है। तुमने मांगा, उसके पहले दिया हुआ है। धन्यवाद दो अब ! अब प्रार्थना का पूरा-का-पूरा रंग बदलो ! अब प्रार्थना को अनुग्रह का भाव बनाओ ! अब झुको ! लेकिन धन्यवाद देने के लिए, कि तेरी अनुकंपा अपार है !

गुरुदास, बात घटेगी। मगर तुम क्या चाहते हो, उसके संबंध में मैं कुछ नहीं कह रहा हूं। जब मैं कहता हूं बात घटेगी, तो मैं यह कह रहा हूं कि तुम्हारे भीतर से यह सब जाल विचार का, वासना का, आकांक्षा का—यह सारा अंधकार टूट जाएगा। रोशनी होगी। शून्य उतरेगा। शून्य में पूर्ण भी उतरेगा। तुम अमृत को जान सकोगे। मगर तुम क्षुद्र मांगते हो ! तुम व्यर्थ की चीजें मांगते हो ! वे नहीं मिलतीं। फिर पंडित-पुजारियों के चक्कर में पड़ते हो। एक पंडित से नहीं मिलती है तो दूसरे पंडित के पास जाते हो। और ऐसे भटकते हो धक्के खाते हुए, दीन-हीन, जबकि तुम सम्राट हो और परमात्मा तुम्हारे भीतर विराजमान है। न किसी मंदिर में जाना है, न काबा, न कैलाश, न काशी, जरा अपने भीतर झांक कर देखना; घूंघट के पट खोल, तोहे पिया मिलेंगे।

जिनके पास तुम जाते रहे, उन्होंने बहुत-सा कचरा तुम्हें दिया होगा। क्योंकि जो सत्य नहीं दे सकते, वे असत्य दिये बिना नहीं रह सकते, तो कंकड़-पत्थर देंगे। तो झाड़ लो अपनी झोली अब बिलकुल ! जो-जो तुम्हें पंडित-पुरोहितों ने दिया हो, बड़ी कृपा होगी तुम्हारी तुम पर, उस सब से अपनी झोली खाली कर लो ! उनके पास ही होता तो वे पंडित-पुरोहित न होते; वे बुद्ध होते, महावीर होते, कृष्ण होते, क्राइस्ट होते।

पंडित-पुरोहित तो कृष्ण, क्राइस्ट और बुद्ध के वचनों पर जीते हैं। उनकी संपदा पर, उनकी प्रतिष्ठा पर धंधा करते हैं। उनका अपना कोई अधिकार नहीं है, अपना कोई अनुभव नहीं है। काश, उनके पास कुछ होता तो वे ये दो कौड़ी के धंधे नहीं करते रहते। वे तुम्हारे लिए ताबीज और गंडे नहीं बांधते रहते। कौन बुद्ध तुम्हारे लिए गंडे-ताबीज बांधेगा ! वे तुम्हारी जन्म-कुंडलियां नहीं देखते रहते। कौन बुद्ध तुम्हारी जन्म-कुंडलियां देखेगा !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं एक नगर में बहुत वर्षों तक रहा। मेरे पड़ोस में एक पंडित जी रहते थे। उनकी बड़ी प्रसिद्धि थी। उनकी प्रसिद्धि यह थी कि जिन युवक-युवतियों के विवाह दूसरे पंडित कह देते कि नहीं हो सकते—क्योंकि इसमें अड़चन है, तालमेल नहीं है, लक्षण नहीं मेल खाते; खतरा है; मंगल आता है; और न मालूम क्या-क्या बातें जिनमें दूसरे पंडित-पुरोहित बता देते थे, उनकी प्रसिद्धि यह थी कि वे हर किसी का मेल बिठा देते थे। मैंने उनसे पूछा, एक दिन ऐसे ही उनके बगीचे में घूम रहा था, मैंने उनसे कहा कि आपकी बड़ी प्रसिद्धि है, लोग मुझसे कहते हैं आकर कि बड़े-बड़े पंडित...काशी भी हम हो आते हैं, वहां के पंडित भी कह देते हैं कि नहीं भाई, यह विवाह नहीं होगा, लड़की को मंगल है, मगर आप जमा देते हैं ! उन्होंने कहा कि जमाना अपने हाथ का काम है। कोई कुंडली में सत्य है क्या ? सब खेल है। अगर कुंडली में कुछ सत्य होता तो दुनिया में आनंद-ही-आनंद न होता ! सब ने तो अपनी कुंडली मिलवा कर शादी-विवाह किये हैं; और फिर फांसी लग गयी ! जब कुंडली मिल कर फांसी लग गयी, तब और ज्यादा क्या होगा ? नहीं मिलेगी तो भी चलेगा। तो मैं तो बिठा देता हूं, मिला देता हूं, किसी भी तरह से, जमा देता हूं। मेरी फीस जरा ज्यादा है। जो भी चुकाने को राजी है, मैं उसकी मिला देता हूं। दूसरे पंडित-पुजारी किताब के हिसाब से ही चलते रहते हैं मेरा ढंग और है।

मैंने उनसे एक कहानी कही। मैंने उनसे कहा, आपने मुझे याद दिलाया—

एक सम्राट एक गांव से गुजर रहा था। चकित हुआ बहुत। उसका एक ही शौक था जीवन में—निशानेबाजी। और उस जैसा निशानेबाज नहीं था। और वह निशानेबाजों की बड़ी कद्र करता था। उसने सारे देश के अच्छे-से-अच्छे निशानेबाज अपने दरबार में इकट्ठे कर रखे थे। मगर उस गांव में आकर उसे थोड़ी-सी निराशा हुई, थोड़ा-सा हीनता का भी भाव हुआ। उसने जगह-जगह देखा, वृक्षों पर तीर लगे हैं। ठीक गोला जो खींचा गया है, उसके बिलकुल मध्य में तीर लगे हैं। न रत्ती-भर इधर, न रत्ती-भर उधर। खलिहानों के दरवाजे पर तीर लगे हैं, ठीक गोलों के मध्य में। इतनी जगह तीर लगे देखे गोले के मध्य में कि उसने कहा कि ऐसा तीरंदाज मैंने देखा नहीं जो एक तीर नहीं चूका ! उसने कहा, रोको रथ मेरा, पता करो कौन है यह आदमी ? इसकी हमें खबर भी नहीं है।

गांव में पूछ-ताछ की गयी। लोग हंसने लगे; लोग कहने लगे कि आप उसकी फिक्र ही न करो; वह गांव का पागल है। उसका दिमाग खराब है। सम्राट ने कहा, दिमाग खराब हो या ठीक, इससे सवाल नहीं है; हमारे सब के दिमाग ठीक हैं, मगर हम से भी कभी चूक हो जाती है, इस आदमी का तो निशाना गजब का है ! हो पागल तो हो, मगर मेरे सम्राट की आज्ञा है, उसे लाया जाए, हम उसे सम्मानित करेंगे, वह हमारे राजदरबार का रत्न होगा। वे लोग कहने लगे, आप उसकी तरकीब नहीं जानते। उसकी तरकीब यह है कि वह तीर पहले मारता है। और फिर बाद में गोला खींचता है। अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीर बीच में न लगे तो करे भी क्या ? कहीं भी तीर मार देता है, फिर जाकर चाक से गोला खींच देता है। उसका दिमाग खराब है ! आप उससे परेशान न हों।

तो मैंने उन पंडित जी से कहा कि आपकी बात से मेरी बात मेल खाती है, मैं समझा। उन्होंने कहा कि यही मेरा राज है। मैं पहले मिला देता हूं जन्मकुंडली, फिर उसी हिसाब से जन्मकुंडली जमा देता हूं। जिससे मेल खा जाए; न मेल से कोई मूल्य है, न बेमेल से कोई मूल्य है; लोग मूढ़ हैं, वे कहने लगे। मेरा धंधा चलता है, उनका काम निपट जाता है—दोनों की बन जाती है, बिगड़ता क्या है ? न अपना कुछ गया, न उनका कुछ गया। न हल्दी लगी न फिटकरी, रंग चोखा हो जाए।

तुम जिनसे पूछने गये थे, तुमने यह भी देखा, उनको रामनाम मिला ?

बुढ़ापे में ढब्बूजी को मानसिक रोग हो गया। वे बहुत उदास-से रहने लगे। कारण यह था कि उन्हें रोज रात को एक बहुत ही बेहूदा सपना दिखायी देता था कि वे कड़ाही में गोबर तल रहे हैं। रोज-रोज यही सपना आता। एक रात में तीन-तीन, चार-चार बार आता। रातभर गोबर तलते रहते ! हालत बिगड़ गयी। बिगड़ ही जाए ! आखिर रात-भर गोबर तलो, तो सुबह से सिर दुखे और दिन-भर चिंता बनी रहे कि फिर रात आ रही है। अंततः एक मनोचिकित्सक के पास गये। उससे सपने का पूरा ब्यौरा बतलाया। मनोचिकित्सक बोला, रोग जरा कठिन है, ढब्बूजी ! उपचार के लिए पांच सौ रुपये फीस देनी पड़ेगी। क्या कहा, ढब्बूजी ने नाराज होकर कहा, पांच सौ रुपये ? होश की बात कर ! अरे मूर्ख, उल्लू के पट्ठे, अगर मेरे पास इतने रुपये ही होते तो क्या मैं गोबर तलता ? अरे, बाजार से मछलियां खरीद कर न लाता !

वे जो तुमको सलाह दे रहे हैं नाम की, वे जो तुमको सलाह दे रहे हैं कि जन्मों-जन्मों में मिलेगा, जरा गौर से उनकी आंखों में तो देखते गुरुदास, उनको मिला ? उनसे तो पूछते कि आप कितने जन्मों से तलाश कर रहे हैं ? अभी तक आपको नहीं मिला ? कब तक आप तलाश करेंगे ? और तुम यह भी तो सोचते कि तुम भी कुछ नये थोड़े ही हो, तुम भी तो बहुत जन्मों से तलाश कर रहे हो ! अनंत-अनंत जन्मों से तलाश कर रहे हो, अब और अभी जन्म लेने पड़ेंगे ? कुछ कमी रह गयी है तलाश करने में ?

तुम उतने ही प्राचीन हो जितना यह अस्तित्व। अगर कभी कोई प्रारंभ था तो तुम प्रारंभ से यहां हो। कितने तुमने पाठ नहीं किये होंगे और कितनी गीताएं नहीं पढ़ी होंगी; कितने धर्मों में तुमने जन्म न लिया होगा; कितने पंडितों की कितनी मूढ़ताओं को तुमने पालन न किया होगा; कितने व्रत-उपवास न किये होंगे—अनंत यात्रा है—हाथ क्या लगा है ? और अभी भी यही सवाल कि आगे कुछ होगा।

बंबई में एक नया-नया होटल खुला था, जिसके बाहर ही एक बड़ा साइनबोर्ड लगा था कि चिन्ता न करें, इस होटल में आपका बिल आपके नाती चुकाएंगे। मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने मित्रों के साथ होटल के सामने से गुजर रहा था, उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नजर साइनबोर्ड पर गयी, उसने कहा, अरे, यह होटल कब खुल गया ? क्या पते की बात लिखी है : 'आपका बिल आपके नाती चुकाएंगे' ! चलो, हो जाए कुछ ! इस तख्ती को देखकर तो भूख भी जग गयी है। सभी पहुंच गये होटल के भीतर और भरपेट भोजन किया और जो कुछ भी वे खा-पी सकते थे उन्होंने खाया-पिया, जब हाथ-मुंह धो कर चलने लगे तो बैरे ने एक सौ बीस रुपये का बिल लाकर सामने रख दिया। बिल देख कर मुल्ला तो बहुत नाराज हुआ। उसने कहा, यह क्या अंधेर है। बाहर इतना बड़ा बोर्ड लगा रखा है कि आपका बिल आपके नाती चुकाएंगे, फिर यह बिल देते हुए शर्म नहीं आती ? बैरा बोला, हुजूर, यह आपका नहीं, आपके दादाजी का बिल है।

तुम कितने दिन से यहां हो ! कितनी बार तुम जिए हो ! कितनी बार तुम मरे हो ! जन्म और मरण की इस अनंत शृंखला में अब तक कुछ उपलब्धि नहीं हुई ? और पंडित पुरोहित कह रहे हैं कि और थोड़े जनम ! अब क्या जोड़ लोगे और जो तुमने अब तक नहीं किया है ? नहीं, यह भाषा गलत है। भविष्य की भाषा गलत है। धर्म की भाषा है : वर्तमान।

मैं तुमसे कहता हूं, अभी और यहीं इसी क्षण परमात्मा उपलब्ध हो सकता है, क्योंकि परमात्मा उपलब्ध ही है। तुमने उसे कभी खोया ही नहीं था। सिर्फ तुम पीठ करके खड़े हो गये हो। जैसे कोई सूरज की तरफ पीठ करके खड़ा हो जाए। तो कोई सूरज खो थोड़े ही जाता है ! जरा-सा घूमना है और सूरज सामने है। या यह भी हो सकता है कि सूरज सामने हो और तुम आंख बंद किये खड़े हो। जरा-सी आंख खोलनी है और सूरज सामने है। ऐसा ही परमात्मा है। ऐसा ही जीवन का परम अर्थ है। ऐसा ही निर्वाण है। निर्वाण तुम्हारा स्वभाव है। परमात्मा तुम्हारा अस्तित्व है।

इसलिए जो तुमसे कहे कि बहुत जन्म लगेंगे, समझ लेना चालबाजी है। मैं तुमसे कहता हूं, जन्म की बात छोड़ो, दिनों की भी बात व्यर्थ है, क्षणों की भी बात व्यर्थ है। प्रश्न समय का ही नहीं है। प्रश्न तो अभी जागने का है। जब जागे तब सवेरा। क्योंकि सवेरा तो है ही, बस तुम सोए हुए हो।

गुरुदास, जागो !

और जागने के लिए मैं तुमसे कहूंगा कि अब नामजप तुम काफी कर चुके, माला तुम काफी फेर चुके, अब उसी उपद्रव से कुछ न होगा। अब तो उचित होगा कि तुम शान्त बैठो, श्वास को देखो, साक्षी बनो। और श्वास को देखने से सुंदर साक्षी बनने का दूसरा कोई उपाय न कभी था और न कभी होगा। क्योंकि श्वास सहज चल रही है, साधनी नहीं पड़ती, अपने-आप चल रही है– आ रही है, जा रही है–तुम्हें कुछ करना नहीं है। कृत्य का सवाल ही नहीं है। राम-राम तो करना पड़ेगा। कभी भूल भी जाओगे। कभी पड़ोसी खुसुर-पुसुर बातें करने लगेगा तो सुनने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की इच्छा जग जाएगी, राम-वाम सब भूल जाएगा। सड़क पर कुत्ते लड़ने लगेंगे, शोरगुल हो जाएगा, विघ्न-बाधा पड़ जाएगी—हजार उपद्रव आ जाएंगे, क्योंकि राम-राम तुम्हें करना पड़ेगा। लेकिन श्वास तो चल ही रही है। तुम चाहे देखो, चाहे न देखो, उसकी अनवरत धारा बह रही है।

श्वास माला है। असली माला है। श्वास के मनके ही असली मनके हैं। और साक्षी भाव असली भजन है, असली कीर्तन है।

तुम देखो श्वास को चलते, आते-जाते। फिर धीरे-धीरे जब अंतराल दिखाई पड़ने लगें, श्वास ठहर गयी क्षणभर को भीतर, क्षणभर बाहर, उन अंतरालों में खूब सजग होकर, खूब चौकन्ने होकर देखना क्या दिखाई पड़ता है ? जो तुम देखोगे वह परम धन है। परम ऐश्वर्य है। वही परमात्मा है। उसे देखते ही जीवन के सब दुख गल जाते हैं। उसे देखते ही फिर सब सत्य है, सब चैतन्य है, सब आनंद है। उसे देखते ही सच्चिदानंद है।

आखिरी प्रश्न :

ओशो,
ये युगल बावरे नैन
और तू दूर देश का वासी
चिर से तव दर्शन की उत्कट अभिलाषा है
तेरे इस मधुर मिलन की इनको आशा है
दर्शन से पहले भी ये कुछ-कुछ गीले हैं।
बात मिलन की करें, सजन उनमीले हैं
तुम बने क्षितिज हम धूल सभी से हैं ये धारावाही
ये युगल बावरे नैन
और तू दूर देश का वासी
तेरे कटाक्ष की ऊषा किरण इक पहली थी
और तभी हृदय-मकरन्द पंखुड़ी फैली थी
रह गया अधखिला क्या केवल मुरझाने को
पहले वसंत ही में क्या पतझड़ बन जाने को
मैं इस वियोग वेला में हूं अब व्यथासिंधु अवगाही
ये युगल बावरे नैन
और तू दूर देश का वासी

रवीन्द्र सत्यार्थी ! नहीं, वह दूर देश का वासी नहीं है ! वह अंतरवासी है ! तुम ही हो वह ! तत्वमसि, श्वेतकेतु !

आज इतना ही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3.

करामाति यह खेल अंत पछितायगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करामाति यह खेल अंत पछितायगा।
चटक-मटक दिन चारि, नरक में जाएगा।।
भीर-भार से संत भागि के लुकत हैं।
अरे हां, पलटू सिद्धाई को देखि संतजन थुकत हैं।।

क्या लै आया यार कहा लै जायगा।
संगी कोऊ नाहिं अंत पछितायगा।।
सपना यह संसार रैन का देखना।
अरे हां, पलटू बाजीगर का खेल बना सब पेखना।।

जीवन कहिये झूठ, साच है मरन को।
मूरख, अजहूं चेति, गहौ गुरु-सरन को।।
मांस के ऊपर चाम, चाम पर रंग है।
अरे हां, पलटू जैहै जीव अकेला कोउ ना संग है।।

भूलि रहा संसार कांच की झलक में।
बनत लगा दस मास, उजाड़ा पलक में।।
रोवनवाला रोया आपनि दाह से।
अरे हां, पलटू सब कोई छेंके ठाढ़, गया किस राह से।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कच्चा महल उठाय, कच्चा सब भवन है।
दस दरवाजा बीच झांकता कवन है।।
कच्ची रैयत बसै, कच्ची सब जून है।
अरे हां, पलटू निकरि गया सरदार, सहर अब सून है।।

हाथ गोड़ सब बने, नाहिं अब डोलता।
नाक कान मुख ओहि, नाहिं अब बोलता।।
काल लिहिसि अगुवाय, चलै ना जोर है।
अरे हां, पलटू निकरि गया असवार सहर में सोर है।।

आया मूठी बांधि, पसारे जायगा।
छूछा आवत जात, मार तू खायगा।।
किते बिकरमाजीत साका बांधि मरि गये।
अरे हां, पलटू रामनाम है सार संदेसा कहि गये।।

जो जनमा सो मुआ नाहिं थिर कोइ है।
राजा रंक फकीर गुजर दिन दोइ है।।
चलती चक्की बीच परा जो जाइकै।
अरे हां, पलटू साबित बचा न कोय गया अलगाइकै।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आस्कर वाइल्ड की एक कथा :

रात का समय था और वह अकेला था। वह अर्थात् जीसस। उसने दूर एक भव्य नगरी का प्राचीर देखा और वह उसकी ओर बढ़ा।

जब वह पास पहुंचा तो उसने नगरी के अंतराल से आनंदमय पदचाप और प्रमुदित मुखों के हास और अनेक वीणाओं की उन्मत्त झंकार के शब्द मुखरित होते सुने। उसने मुख्य द्वार खटखटाया और द्वारपालों ने उसके लिए द्वार खोल दिये। और उसने देखा एक भवन, जो स्फटिक का बना था और जिसके सामने स्फटिक के सुंदर स्तंभ खड़े थे। स्तंभों पर फूलों के वंदनवार लटके थे और घर के भीतर और बाहर चंदन की मशालें जल रही थीं। उसने भवन में प्रवेश किया।

जब वह पद्मराग के सभाकक्ष और मरकत के सभाकक्ष से होता हुआ भोज के कक्ष में पहुंचा तो उसने नीलरक्ताभ आसन पर एक व्यक्ति को लेटे पाया, जिसके बालों में गुलाब के फूल लगे थे और जिसके अधर मदिरा से लाल हो रहे थे। वह उसके पास गया और उसके कंधे पर हाथ रख कर बोला, मित्र, तुम्हारा जीने का यह ढंग कैसा है ? क्या यही जीवन है ! वह युवक उसकी ओर मुड़ा और उसे पहचानकर बोला, हे प्रभु ! लेकिन मैं तो पहले कोढ़ी था, तुमने ही तो मुझे स्वस्थ कर दिया, अब मैं इस जीवन का क्या करूं ? इसे कैसे व्यतीत करूं ? जीवन जीने का और कोई ढंग तो मैं जानता नहीं हूं।

उसने उस भवन को त्याग दिया और सड़क पर लौट आया। वह थोड़ा उदास था। उसने ऐसी अपेक्षा न की थी।

कुछ देर बाद उसने एक स्त्री को देखा, जिसका मुखड़ा तथा परिधान रंगीन थे और जिसके नूपुरों में मोती लगे थे। एक युवक उसका पीछा एक शिकारी की तरह मंदगति से कर रहा था। युवक ने दोरंगी कमीज पहन रखी हुई थी। स्त्री का मुख एक मूर्ति की तरह सुंदर था और नवयुवक की आंखों में वासना की चमक थी। उसने द्रुतगति से उसका पीछा किया और नवयुवक के हाथ पर हाथ रख कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा, भाई मेरे, तुम स्त्री की ओर क्यों देख रहे हो और इस तरह क्यों घूर रहे हो ? आंखें क्या वासना के लिए बनाई गयी हैं ? आंखें क्या क्षुद्र को देखने के लिए बनाई गयी हैं ? नवयुवक पलटा और उसे पहचानकर उसने कहा, हे मेरे मालिक ! पर मैं तो अंधा था, तुमने ही मुझे दृष्टि दी, अब मैं किस तरह निहारूं, किसको निहारूं ? इन आंखों का क्या करूं ? जिम्मेवार हो तो तुम जिम्मेवार हो। मेरा कसूर क्या है ?

उसने दौड़कर स्त्री का रंगीन आवरण छुआ और कहा, बहन, क्या पाप के अतिरिक्त कोई और मार्ग नहीं है ? औरत उसे पहचानकर हंसी और बोली, पर प्रभु मेरे ! तुमने ही मेरे पाप क्षमा कर दिये थे। और यह मार्ग सुखमय भी है। और दूसरे किसी मार्ग का मुझे पता भी तो नहीं। क्या तुम मुझे भूल गये ? मैं वही तो हूं जिसे लोग नदी के किनारे पत्थरों से मारने के लिए ले गये थे और तुमने उन लोगों से कहा था : वही पत्थर मारे पहले जिसने जीवन में न तो पाप किया हो और न पाप की आकांक्षा की हो। और फिर वे सारे लोग पत्थरों को छोड़कर चुपचाप हट गये थे; क्योंकि उनमें से कोई भी न था जिसने पाप न किया हो और कोई भी न था जिसने पाप के विचार न किये हों। तब हम दोनों ही अकेले नदी-तट पर रह गये थे। सांझ होने लगी थी और सांझ के पहले तारे निकल आए थे और मैंने तुमसे कहा था, हे मेरे प्रभु ! मेरे पापों का दण्ड दो। लेकिन तुमने कहा था, मैं दण्ड देने वाला कौन हूं ? मैं तुम्हें क्षमा करता हूं। और तब से मैं ऐसे ही जी रही हूं। पाप को तुमने क्षमा कर दिया—और पाप रसमय भी है, सुखमय भी है !

वह बहुत उदास हो गया—वह यानी जीसस, स्मरण रहे—और नगर छोड़कर बाहर चला गया। जब वह नगर के बाहर हो गया, तो उसने सड़क के किनारे एक नवयुक को बैठे रोते देखा। वह नवयुवक वृक्ष से रस्सी बांधकर आत्मघात की व्यवस्था कर रहा था। वह उसके पास गया और उसके लंबे बालों को छूकर बोला, मेरे प्रिय ! तुम रोते क्यों हो ! और यह अपनी ही मृत्यु का आयोजन कैसा ! जीवन जैसे बहुमूल्य हीरे को क्या ऐसे फेंका जाता है ? नवयुवक ने सिर उठाया और उसे देखा और पहचानकर बोला, महाप्रभु ! मैं तो मर चुका था और तुमने मुझे फिर से जीवन दिया। अब मेरी समझ में नहीं आता मैं इस जीवन का क्या करूं ? मैं रोऊं नहीं तो भला और क्या करूं ! और रोता कब तक रहूं ? और रो-रो कर जीने से फायदा क्या है ? इसलिए मैंने मर जाने का निश्चय किया है।

आस्कर वाइल्ड की यह कथा सच हो या सच न हो—क्योंकि ईसाई ग्रन्थों में इसका कोई उल्लेख नहीं है—लेकिन ग्रन्थों में उल्लेख हो या न हो, आस्कर वाइल्ड की अन्तर्दृष्टि तो पैनी है। बात तो उसने गहरी पकड़ी है। उसने तो जीसस के पूरे जीवन पर एक प्रश्नचिह्न लगा दिया। लोगों को आंखें देना काफी नहीं है, उन्हें देखने का ढंग भी तो देना होगा ! लोगों का जीवन देना काफी नहीं है—क्योंकि जीवन तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबके पास है और प्रत्येक उसे गंवा रहा है। कुछ और लोगों को जीवन मिल जाएगा, वे भी यही करेंगे।

मुर्दों को जिला दो, इसमें चमत्कार नहीं है। असली चमत्कार है : जीवित को जीवन की कला देना। और अंधे को आंख दे दो, इसमें कुछ बड़ा राज नहीं है। असली रहस्य की बात तो है : आंख वाले को देखने की कला दे देना। सभी तो जी रहे हैं और सभी के पास आंखें हैं। लंगड़ों को पैर दे दो, जाएंगे कहां ? वेश्यालयों में पहुंच जाएंगे। अंधों को आंखें दे दो, वे भी इसी दौड़ में, इसी स्पर्धा में, इसी बाजार की भीड़ में खो जाएंगे। मुर्दों को जिला दो, वे फिर अपनी मर गई वासनाओं को पुनरुज्जीवित कर लेंगे। मुर्दों को जिलाना अर्थात् उनकी वासनाओं को जिलाना। अंधों को आंख देना अर्थात् उनकी वासना को आंख देना। लंगड़ों को पैर देना अर्थात् उनकी वासना को पैर देना। और वासना के पैर हों, आंख हों, जीवन हो, तो नर्क ही निर्मित होता है, स्वर्ग नहीं।

आस्कर वाइल्ड की कथा बहुमूल्य है। जीसस के जीवन में घटी हो या न घटी हो, लेकिन तुम्हारे सबके जीवन में तो रोज घट रही है। परमात्मा ने जीवम दिया और एक दिन जब परमात्मा तुमसे पूछेगा कि मेरे भाई, तुमने जीवन का क्या किया ? तो क्या कहोगे ? आंखें उठा सकोगे ? उससे आंखें चार कर सकोगे ? शर्म से गड़-गड़ जाओगे ! आंखें जमीन से उठाते न बनेंगी। लौट कर देखोगे तो बहुत पछताओगे। जिन्दगी तो ऐसी चली गयी जैसे सपना हो। पकड़ में तो कुछ न आया। हाथ तो कोई संपदा न लगी। कोई शाश्वत सत्य तो उपलब्ध न हुआ। हां, धन मिला, पद मिला, प्रतिष्ठा मिली, लेकिन सब पानी के बबूले थे—बने और फूट गये। इन्द्रधनुष थे, दूर से बड़े सुहावने थे, पास गये तो कुछ भी न था। मृगमरीचिकाएं थीं। दूर से बहुत प्रलोभन दिया था और पास जब आए, तो सब सोना मिट्टी हो गया।

पलटू कहते हैं—

करामाति यह खेल अंत पछितायगा।

अभी जागो ! इसी क्षण जागो ! न कल पर टालना। टाला तो टालते ही चले जाते हो। टाला तो टालने की आदत बन जाती है। आज कल पर टालोगे, कल परसों पर टालोगे; पिछले जन्म इस जन्म पर टाल दिया था, इस जन्म अगले जन्म पर टाल दोगे—टालते ही रहोगे, जिओगे कब ? टालते ही रहोगे, देखोगे कब ? टालते ही रहोगे, सुनोगे कब ? और अहर्निश बज रहा है उसका नाद और अहर्निश हो रहा है उसका नृत्य और अहर्निश वर्षा हो रही है उसके आनंद की। और तुम हो कि वंचित के वंचित।

तुम हो ऐसे चिकने घड़े कि पानी तुम्हें छूता भी नहीं। प्रभु बरस जाता है और तुम रूखे-के-रूखे रह जाते हो। या कि तुम हो उल्टे रखे घड़े। प्रभु बरसता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है मगर तुम खाली के खाली। या कि तुम सीधे रखे घड़े हो, मगर बहुत छिद्रों से भरे हो। भरने लगते हो मगर भर नहीं पाते। छिद्रों से सब बह जाता है। या कि तुम्हें भ्रान्ति है कि तुम भरे ही हुए हो। इसलिए तुम प्रभु को द्वार ही नहीं देते कि तुम्हें भर सके । तुमने न-मालूम कितनी तरकीबें निकाल ली हैं जीवन को गंवाने की ! कमाओगे कब ?

मरते वक्त लोग इसलिए नहीं रोते कि मौत आ गयी। नहीं, मरते वक्त लोग इसलिए रोते हैं कि जिन्दगी व्यर्थ गयी।

इसे मैं फिर दोहरा दूं।

मरते वक्त लोग जिन्दगी से इसलिए नहीं चिपटते कि मौत से डरते हैं। जिसको जानते ही नहीं, उससे डरेंगे भी कैसे ? जिससे कभी मुलाकात ही नहीं हुई उससे भय क्या ? और कौन जाने, वह जीवन से भी बेहतर हो ? नहीं, मरते वक्त लोग जीवन को पकड़ते हैं, क्योंकि यह जीवन चला हाथ से और हम तो कल पर टालते रहे—अब कोई कल नहीं होगा, मौत आ गयी; अब हम टाल नहीं सकते; अब हमारी पुरानी आदत के लिए कोई उपाय नहीं है। और आज जीना तो हम जानते ही नहीं ! हम तो सदा कल में जीते हैं।

हिन्दी शायद दुनिया की अकेली भाषा है, जिसमें हम बीते कल को भी कल कहते हैं और आने वाले कल को भी कल कहते हैं। यह अनूठी बात है। मगर इसमें बड़ा राज छिपा है। जरूर ज्ञानियों ने इन शब्दों की खोज की होगी। इस देश के शब्दों में ज्ञानियों की ध्वनि समा गयी है। बीत गया, वह भी कल; आने वाला है, वह भी कल। दोनों झूठ।

और कल शब्द हमने बनाया कैसे ?

बनाया है काल से। काल के दो अर्थ : एक समय और एक मृत्यु। वह भी बड़ा विचारणीय है। समय ही मृत्यु है। मृत्यु समय का ही दूसरा नाम है। बंगाली में तो कल को भी काल कहते हैं।...ऐसे ही तो कलकत्ते का नाम पड़ा।

जब अंग्रेज पहली दफा भारत आए, तो वे तलाश कर रहे थे कहां राजधानी बनाएं। उनके इंजीनियर और उनके स्थापत्य-कला के पारखी स्थान की तलाश कर रहे थे। एक जगह उन्हें बहुत पसंद आयी—मनोरम, सुंदर। उन्होंने जो किसान वहां काम कर रहा था उससे पूछा कि इस जगह का नाम क्या है ? वह उनकी भाषा न समझा। वह समझा कि पूछ रहे हैं कि जो फसल उसने काटी, कब काटी ? उसने कहा, 'काल'; 'काल काटा'। ऐसे कलकत्ता पैदा हुआ। तो उन्होंने समझा कि इस जगह का नाम है : कालकाटा; कलकत्ता।

काल का अर्थ समय भी, काल का अर्थ मृत्यु भी। कल भी मृत्यु थी। गया कल, मौत घट गयी। और आने वाले कल भी और क्या घटने को शेष है, सिर्फ मौत घटेगी ! जीवन तो अभी है। जीवन आज है। जीवन समय का हिस्सा नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन समयातीत है, कालातीत है। जीवन तो क्षण-क्षण जीने की कला है। जो इस कला को सीख लेता है, वही पछताता नहीं। अन्यथा अन्त समय बहुत पछताना होता है।

जीना है तो पी कर जी

दुनिया और दुनिया वालों को
मज़हब के सब रखवालों को
नाम बता और जाम चढ़ा जा
आंख दिखा और जाम चढ़ा जा
पीना है तो जीकर पी
जीना है तो पीकर जी

'पी' की नजरें घोल के पीले
जय साक़ी की बोल के पीले
पी ले पी ले जितना चाहे
जी ले जी ले जितना चाहे
पीकर किसने तोबा की
जीना है तो पीकर जी

मन से चिंता मुंह मोड़ेगी
दुःख की नागिन दम तोड़ेगी
नश्शे में आशा झूमेगी
तारों की चितवन चूमेगी
पीने वाले जल्दी पी
जीना है तो पीकर जी

जीवन अभी है। और काश तुम पी सको, अभी पी सको ! यह घूंट, काश, इसी क्षण तुम्हारे कंठ से उतर जाए, तुम्हारे हृदय के पात्र में भर जाए, तो पछताओगे नहीं। मृत्यु है कल, जीवन है आज। मृत्यु है स्थगित करने में, जीवन है जीने में। इसीलिए मैं सभी लोगों को जीवित नहीं कहता। जी ही नहीं रहे हैं, तो जीवित क्या ख़ाक कहो ! चलते हैं, फिरते हैं जरूर, और श्वास भी लेते हैं और भोजन भी करते हैं। काम-धंधे भी करते हैं हजार; रात सोते भी हैं, सुबह उठते भी हैं; ऐसे तो सब हो रहा है, अगर तुम इसको जीवन कहते हो तो तुम्हारी मर्जी ! फिर तुम बुद्धों के जीवन से परिचित न हो पाओगे। फिर तुमने क्षुद्र से ही तृप्ति कर ली, तुम जानो ! फिर पछताओगे तो पीछे कहना मत ! यह जीने का कोई ढंग नहीं है। ऐसे तो पशु भी जीते हैं, फिर मनुष्य का आविर्भाव कहां ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य का जीवन एक नयी खोज है। मनुष्य का जीवन एक अन्वेषण है। मनुष्य का जीवन एक उत्तुंग आकाश को छूती हुई लहर है। उसके जीने की कला है कि प्रतिपल समग्रता से, एक-एक पल पूरे डूबकर जीना। इतने डूबकर जीना कि न तो बीते कल की याद आए और न आने वाले कल की याद आए; न अतीत रह जाए, न भविष्य रह जाए, सिर्फ वर्तमान हो—फिर कोई मृत्यु नहीं है। और जब कोई मृत्यु नहीं है, तभी तुम जानोगे कि परमात्मा है।

जीना है तो पीकर जी

दुनिया और दुनियावालों को
मज़हब के सब रखवालों को
नाम बता और जाम चढ़ा जा
आंख दिखा और जाम चढ़ा जा
पीना है तो जीकर पी
जीना है तो पीकर जी
'पी' की नजरें घोल के पी ले
जय साक़ी की बोल के पीले
पी ले पी ले जितना चाहे
जी ले जी ले जितना चाहे
पीकर किसने तोबा की
जीना है तो पीकर जी
मन से चिंता मुंह मोड़ेगी
दुःख की नागिन दम तोड़ेगी
नश्शे में आशा झूमेगी
तारों की चितवन चूमेगी
पीनेवाले जल्दी पी
जीना है तो पीकर जी
पैमाने की रीत मिटा दे
मैखाना होठों से लगा दे
फिर ये मौसम कब आयेगा
आयेगा क्या तरसायेगा
अब भी 'पी' हैं और तू भी
जीना है तो पीकर जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा मौजूद है, प्यारा मौजूद हैं; लेकिन प्यारा अभी मौजूद है, तुम कल पिओगे, तालमेल हो न पाएगा। तुम्हारी प्याली सुराही के पास कभी आ न पाएगी। सुराही अभी है और प्याली कल। कहीं वर्तमान भविष्य से मिला है ? जो है वह उससे मिला है जो नहीं है ? कभी भाव अभाव से मिला है ? नहीं, यह मिलन होता ही नहीं। किसी राह पर, किसी द्वार पर, किसी मार्ग पर, किसी मोड़ पर यह मिलन होता ही नहीं। वर्तमान में जीने का नाम ध्यान है। वर्तमान में समग्ररूप लीन हो जाने का नाम समाधि है।

करामाति यह खेल अंत पछितायगा।
चटक-मटक दिन चारि, नरक में जायगा।।

हां, तुम कहोगे हम भी जी रहे हैं। मगर तुम्हारा जीना है क्या ? चटक-मटक ! चटकुओं-मटकुओं की भीड़ है। तुम्हारा जीवन क्या है ? एक नुमाइश, जैसे दूसरों को दिखाने के लिए जी रहे हो। पहन लिए अच्छे कपड़े, थोड़ा रंग-रोगन कर लिया, थोड़ा इत्र-फुलेल लगा लिया और चले ! तुम लोगों को दिखा रहे हो कि जी रहे हो ? तुम्हारे जीने में कोई गहराई कैसे होगी ! तुम तो अभिनेता मात्र हो गये हो। और तुम्हारे चेहरे पर बहुत मुखौटे हैं; जब जैसी जरूरत होती है वैसा मुखौटा लगा लेते हो। कहीं पूंछ हिलानी होती है तो पूंछ हिला देते; कहीं गुर्राना होता है तो गुर्रा देते मगर न तुम्हारे गुर्राने में बल है, न तुम्हारे पूंछ हिलाने में कोई सत्य है। तुम्हारी जिंदगी एक झूठ है। एक लम्बा झूठ, जिसको तुम खींचे चले जाते हो। एक झूठ, जिसको तुम माने चले जाते हो। न तुमने ठीक से प्रेम किया है, न तुमने कभी मैत्री की है।

ऐसी तुमने मैत्री जानी कि जरूरत पड़े तो जीवन दे दो ? तो फिर तुमने मैत्री नहीं जानी। और ऐसा तुमने प्रेम किया है कि अपना सब गंवाने को राजी हो जाओ ? नहीं, प्रेम तुम करते हो गंवाने के लिए नहीं, दूसरे से कुछ पाने के लिए। प्रेम सौदा है। तुमने कभी ऐसी भक्ति की है कि अपनी गर्दन उतार कर रख दो ? अपने को नहीं चढ़ाते भक्त, पड़ोसियों के बगीचों से फूल तोड़कर चढ़ा देते हैं। अपने बगीचे से भी नहीं तोड़ते ! वह भी पड़ोसियों के बगीचे से फूल तोड़कर चढ़ा देते हैं ! चैतन्य का फूल चढ़ाओ, अपनी आत्मा का फूल चढ़ाओ, तो उस प्यारे से मिलना हो। तुमने सस्ती तरकीबें निकाली हैं, तुम परमात्मा तक को धोखा देने की चेष्टा में संलग्न हो। दीया जलाया, आरती उतार ली। प्राणों में कब दीया जलाओगे ? आरती वहां उतारनी है ! धूप-दीप जला ली, सुगंध का धुआं उड़ा दिया। अपने को कब जलाओगे ? तुम्हारे प्राणों से कब धूप उठेगी ? कब तुम्हारे प्राण धुआं बनकर आकाश की तरफ उड़ेंगे ! तब तुम छू पाओगे उसके चरण; उसके पहले नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन लोग चटक-मटक में लगे हैं। कोई हीरों के दीवाने हैं, कोई मोतियों के दीवाने हैं, कोई धन के दीवाने हैं, कोई पद के दीवाने हैं। और बड़े भूले हैं। और सोचते हैं, मिल गया पद, मिल गया धन तो सब मिल गया।

मैंने सुना है—

मंत्री जी जंगल में भटक गये। सिर पर गांधी टोपी, अचकन, चूड़ीदार पाजामा—बिलकुल ठेठ नेता थे, नेता में जरा भी कमी न थी। पीछे सेक्रेटरी था। सेक्रेटरी के हाथ में तिरंगी झंडी थी। कोई भी पहचान लेता कि ये मंत्री जी हैं। भटकते-भटकते एक आदमी दिखाई दिया—देहात का गंवार—नेता जी ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए पूछा, भइया, तुम बता सकते हो कि मैं कहां हूं ? उस गंवार ने नीचे से ऊपर तक नेता जी को कई बार देखा, पीछे झंडी देखी, फिर बोला : महराज, अभी तो कुर्सी पर हैं। लेकिन जिस दिन यह छूट जाएगी, उस दिन असली जगह का पता चल सकेगा। उसके पहले तो मैं कुछ भी नहीं कह सकता हूं।

धन है, तुम फूले नहीं समाते। यह धन का धोखा है। कल धन न होगा तब पता चलेगा कि तुम कौन हो, कहां हो, क्या हो ? अपने वाले भी पहचानेंगे नहीं। पराये तो पराये, अपने भी पराये हो जाएंगे। रास्ते से कट कर निकल जाएंगे। अभी पद पर हो, तो चमचों की जमात तुम्हें घेरे रहेगी। कल पद पर न हो, तब देखना। तब तुम्हें खुद ही चमचा होकर किसी की जमात में सम्मिलित होना पड़ेगा। लेकिन कुर्सियां धोखा दे देती हैं। और छोटे बच्चों को ही नहीं देती हैं, बूढ़ों को दे देती हैं।

छोटे बच्चे अक्सर, बाप अखबार पढ़ रहा है, छोटे बच्चे कुर्सी के मुट्ठे पर खड़े हो जाते हैं और कहते हैं : मैं तुम से बड़ा। पिता मुस्करा कर कहता है कि हां, ठीक ! बच्चे प्रसन्न, बाप से बड़े हो गये। इन पर तुम हंसते हो, कहोगे बच्चे हैं, नासमझ हैं। मगर कुर्सियों पर बैठे हुए दिल्ली में जो लोग हैं, ये बच्चे नहीं हैं ? कोई सत्तर पार कर गया है, कोई पचहत्तर पार कर गया है, कोई अस्सी पार कर गया है, कोई चौरासी पार कर गया है—इनको अब तक कब्रों में विश्राम करना चाहिए था। मगर कुर्सियां इनको जिलाए हैं। कुर्सियों के कारण ये मर भी नहीं सकते। और कौन जाने कई इनमें मर भी गये हों ! मगर शेरवानी और अचकन और गांधी टोपी के मारे पता ही नहीं चलता कि कौन मर गया कौन जिन्दा है ! कुर्सियां इनको ऐसा बल देती हैं कि ये चले जा रहे हैं।

मैंने सुना है ऐसा कि फोर्ड के एक प्रदर्शन-गृह में एक आदमी ने एक कार पसंद की। मैनेजर उस कार में उसे बिठाकर पास की पहाड़ी का चक्कर लगवाने ले गया कि दिखा दे। कोई दस मील जाकर कार अचानक पहाड़ी पर रुक गयी। संभावित खरीददार ने पूछा, नयी गाड़ी और ठेठ पहाड़ पर आकर रुक जाए, यह क्या मामला है ? अच्छा हुआ कि तुमने चलाकर मुझे दिखा दी; अन्यथा मैं फंसता। मैनेजर ने कहा, चिन्ता न करो, कोई गाड़ी में खराबी नहीं है। असल में मैं पेट्रोल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डालना भूल गया। तो उस आदमी ने पूछा कि बिना पेट्रोल के दस मील कैसे चली आयी ? मैंनेजर ने कहा, इसमें कोई खूबी नहीं है, दस मील तो फोर्ड के नाम से ही गाड़ी चल जाती है। दस-पांच मील का तो कोई हिसाब ही नहीं, फोर्ड का नाम काफी है !

दिल्ली में गौर-से अगर जांच-पड़ताल की जाए, अगर पोस्टमार्टम किया जाए, तो बहुत-से नेता पाए जाएंगे कि मर चुके हैं, काफी दिन पहले मर चुके हैं, मगर कुर्सी की गरमी थर्मामीटरों को धोखा दे रही है ! कुर्सी की धक-धक और तुम समझ रहे हो उनके हृदय धड़क रहे हैं !

एक लड़की अपनी मां से कह रही थी कि मां, मैं जिस युवक के प्रेम में हूं, उसका प्रेम बहुत होना चाहिए। क्योंकि जब भी वह मुझे गले लगाता है, मैं सुन सकती हूं उसके हृदय की धक-धक, धक-धक, धक... ! उसकी मां ने कहा कि तू जरा ठहर ! तेरे पिताजी भी मुझे धोखा देते रहे दो साल तक। उसने कहा, क्या मतलब ? उसने कहा कि एक बड़ी-सी जेबघड़ी रख कर छाती के पास...धक-धक, धक-धक, धक-धक...मैं यही समझती थी कि यह प्रेम चल रहा है। वह केवल जेबघड़ी थी।

दिल्ली में नेताओं की एक जांच होनी चाहिए...एक जांच-कमीशन ! 'शाह कमीशन' तो काम नहीं आया, बादशाह कमीशन बैठना चाहिए ! पहले तो यही जांच होनी चाहिए, इनमें कितने लोग मर गये हैं और कितने लोग जिन्दा हैं ? जो मर गये हैं, उनको विदा किया जाए। सम्मान सहित ! कुर्सी की गर्मी जिलाए रख सकती है। और ध्यान रखना, कुर्सी की गर्मी होती है। बड़ी गर्मी होती है। पैसे की गर्मी होती है।

मुल्ला नसरुद्दीन और उसका बेटा दोनों एक नाले को पार कर रहे थे, मुल्ला ने तो छलांग मारी और नाले के उस पार निकल गया ! बूढ़ा ! अब बूढ़ा छलांग मारे और बेटा पीछे रह जाए तो जरा जंचे न, भद्द हो, तो बेटे ने भी छलांग मारी। भद्द होकर रही ! बुरी भद्द हुई ! इससे तो बेहतर था कि नाले में उतर कर पार कर जाता आसानी से ! बीच नाले में गिरा, चारों खाने चित्त ! पानी में डुबकी मार गया। बाहर निकला और पिता से पूछा कि आपका राज क्या है ? आप बूढ़े हो गये, नाला छलांग लगा गये, मैं जवान आदमी हूं, मैं बीच में गिर गया। मुल्ला हंसा। उसने कहा, इसका राज है, बेटा ! जिन्दगी मैंने कुछ ऐसे ही नहीं गंवाई—धूप में बाल नहीं पकाए हैं ! जेब खनखनाई। उसमें नगद रुपये थे। बेटे ने कहा, मैं कुछ समझा नहीं; जेब खनखनाना, नगद रुपये, इससे क्या मतलब ? मुल्ला ने कहा, मैं कभी जेब में बिना नगद रुपये लिये चलता ही नहीं—इसमें गर्मी बनी रहती है। उसी गर्मी से छलांग लगाई। तेरी जेब में क्या है ? खाली जेब, फोकट जेब—गर्मी कहां ! अरे, गर्मी चाहिए !

बिना पैसे के गर्मी नहीं होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुमने देखा है, नेता जब पदों पर होते हैं तो कैसे युवा मालूम होने लगते हैं ? जैसे अभी-अभी इस्त्री किये हुए कपड़े ! और फिर जब पद चले जाते हैं तब उनकी हालत देखो। कैसे कुटे-पिटे ! इस्त्री वगैरह सब खो जाती है। जैसे कई दिनों से इन्हीं कपड़ों को पहने हैं। न नहाया है, न धोया है, इन्हीं कपड़ों को पहन कर सोते हैं। इन्हीं को पहनकर उठ आते हैं।

कहते हैं, चमार लोगों के जूते देख कर पहचान लेते हैं कि कौन आदमी जिन्दगी में सफल हो रहा है और कौन असफल। बात तो ठीक है। जरूर पहचान लेते होंगे, जूतों में कहानी छिपी होती है। सफल आदमी के जूते पर चमक होती है, असफल आदमी के जूते की भी हालत वही होती है जो असफल आदमी की होती है, झुर्रियां पड़ी होती हैं। जगह-जगह चूं-चरर-मरर करता है। वर्षों से तेल नहीं दिया गया है। जगह-जगह फट जाता है। थेगड़े लग जाते हैं।

लोग चटक-मटक को जिन्दगी समझ रहे हैं ! यह जिन्दगी का सिर्फ धोखा है। कुर्सी की गर्मी कोई जीवन का उत्ताप नहीं है। और धन की गर्मी कोई आनंद का उल्लास नहीं है।

और ध्यान रखना कि आसान है चटक-मटक की जिन्दगी में खोजना क्योंकि भीड़ उन्हीं लोगों की है। चारों तरफ वे ही लोग तमाशा बनाए हुए हैं। न खुद जीते हैं ठीक से, न किसी और को जीने देते हैं ठीक से। पड़ोसी ने नयी कार खरीद ली, अब तुम्हें भी खरीदनी होगी। नहीं तो भद्द होती है। पड़ोसी अकड़कर निकलने लगता है। उसकी चाल बदल जाती है। वह नयी कार ले आया। और तुम अभी तक फटियल...फोर्ड का 'टी मॉडल', जिसमें बाबा आदम इडन के बगीचे से निकाले गये, उसी में चल रहे हो ! पड़ोसी ने नये कपड़े बना लिए...स्त्रियां इस मामले में बहुत सजग हैं। कौन कौन-सी साड़ी पहनकर निकल आया है ?

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपनी पत्नी को कह रहा था कि हद हो गयी तेरी बेखर्ची की, फिजूलखर्ची की ! अब मेरी बर्दाश्त के बाहर है। मैं तो कर्ज में डूबा जा रहा हूं और तू नयी साड़ी लेकर फिर आ गयी ! साड़ियों की कमी नहीं है; पहनेगी कब इतनी साड़ियां ? तीन सौ तो साड़ियां मैं गिनती कर चुका हूं। ये साड़ी तू पहनेगी कब ? पत्नी एकदम भनभना गयी, साड़ी जोर से नीचे पटक दी और कहा कि फिजूलखर्ची और मुझको सिखा रहे हो ! और वह तुम जो फायर एक्सटिंग्विशर, आग बुझाने का वह जो लाल बम्बा ले आए हो, जो हनुमान जी की तरह लटका हुआ है घर में—आज तीन साल हो गये, उसका क्या उपयोग ? और मुझे तुम फिजूलखर्ची बता रहे हो !

स्त्रियों के अपने तर्क हैं, अपनी सोचने की व्यवस्थाएं हैं।

और भी चटक-मटक वाली बातें हैं। उनका सारा रस ही इसमें है कि कितने गहने, कितने वस्त्र...यही उनकी आत्मा हो गयी है। पुरुषों की हालत भी बहुत भिन्न नहीं है। क्योंकि दोनों जीते तो एक ही जीवनशैली में हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पलटू कहते हैं, जरा सम्हल जाओ—

चटक-मटक दिन चारि, नरक में जायगा।।

और यह चटक-मटक तुम्हें और-और गहरे दुखों की पर्तों में उतारेगी। क्योंकि जितने ही तुम जीवन से टूटते जाओगे उतने ही दुखी होते जाओगे। दुख का अर्थ है : जीवन से जड़ों का उखड़ जाना। जैसे किसी वृक्ष की जड़ें जमीन से उखड़ जाएं। वह दुखी हो जाएगा। उसके पत्ते कुम्हला जाएंगे। उसके फूल झुक जाएंगे। उसकी कलियां मुर्झा जाएंगी। उस पर फिर पक्षी गीत नहीं गाएंगे। उसके नीचे फिर बटोही छाया में नहीं टिकेंगे। चांद भी निकलेगा, सूरज भी निकलेगा, लेकिन उसके प्राणों में कोई रसधार न बहेगी, कोई उत्सव न होगा। वसंत भी आएगा, लेकिन फूल न खिलेंगे, क्योंकि जड़ें ही जमीन में न रहीं। जीवन में जड़ें चाहिए।

संन्यास का मैं अर्थ करता हूं : जीवन में जड़ें फैलाने की कला। जीवन में जितनी तुम्हारी जड़ें फैल जाएं और जितनी गहरी जड़ें फैल जाएं ! मगर जड़ों में तुम्हारी उत्सुकता नहीं है। तुम्हारी उत्सुकता पत्तों में है। क्योंकि जड़ें तो दिखाई नहीं पड़तीं। कौन फिक्र करता है ! पत्ते दिखाई पड़ते हैं, सो रंग लो पत्ते ! पत्तों पर लगा दो, लिपिस्टिक। पत्तों को पहना दो सुंदर-सुंदर साड़ियां। पत्तों के गलों में हार लटका दो। थोड़ी-बहुत जिन्दगी भी हो पत्तों में तो मर जाएगी। तुम्हारे हार उन्हें मार डालेंगे ! लोग ऐसे ही मर रहे हैं।

इस पूरी जीवन-दृष्टि को बदलना जरूरी है।

सोचो हजार बार, तुम कैसे जी रहे हो ? तुम्हारी शैली क्या है ? तुम्हारे जीवन का गणित क्या है ? चटक-मटक ? औरों को दिखाने के लिए भर जी रहे हो ? या सच में ही भीतर...तुम जो चीजें खरीद लाते हो उनकी जरूरत थी या औरों को दिखाने के लिए खरीद लाए ? उनकी सच में ही आवश्यकता थी ? लोग ऐसी चीजें खरीद रहे हैं जिनकी उन्हें आवश्यकता नहीं है। उधार भी लेकर खरीद रहे हैं, जिनकी उन्हें आवश्यकता नहीं है। जिनको वे समझ भी नहीं सकते, वह भी लोग खरीद रहे हैं। लोग पिकासो के चित्र तक खरीद कर अपनी दीवारों पर लटका लेते हैं। हालांकि उन्हें यह भी पता नहीं कि चित्र को वे जो लटका रहे हैं वह सीधा लटका है कि उलटा !...क्योंकि पिकासो के चित्रों में तय करना बड़ा मुश्किल है कि सीधा क्या, उल्टा क्या !

एक प्रदर्शनी में, पिकासो के चित्रों की प्रदर्शनी चल रही थी और सारे कला-परीक्षक एक चित्र के पास इकट्ठे थे। वह सबसे अनूठा था, और उसकी प्रशंसा में पुल बांध रहे थे कि यह अनूठी कृति है। इससे एक नये युग का आरंभ हुआ। ऐसी कोई कृति कभी नहीं बनायी गयी। तभी पिकासो आया और उसने कहा : अरे भाई, इसे किसने उल्टा लटका दिया है ! उसने जल्दी से चित्र को सीधा लटकाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह उल्टा लटका होने की वजह से अनूठा मालूम हो रहा था ! क्योंकि किसी की कुछ समझ में नहीं आ रहा था। लोग ऐसे मूढ़ हैं कि जो बात जितनी कम समझ में आए, समझते हैं उतनी गहरी होनी चाहिए।

एक महिला ने पिकासो से अपना पोर्ट्रेट बनवाया। पिकासो ने छह महीने लगाए और लाखों डालर मांगे। महिला अरबपति थी, उसने कहा लाखों डालर लो, मगर बनाओ ! चित्र तुम्हारे ही हाथ का चाहिए। चित्र बन कर तैयार हो गया, महिला आयी, उसने चित्र देखा, उसकी कुछ समझ में नहीं आया—उसको यह समझ में ही न आए कि मैं इसमें कहां हूं ? लेकिन पिकासो से कहे कैसे ? इतना महान चित्रकार ! उसने सिर्फ इतना ही कहा झिझकते-झिझकते कि और सब तो ठीक है, मगर जरा मेरी नाक ठीक नहीं बनी। पिकासो ने कहा, यह बहुत झंझट की बात है ! छह महीने मैंने खराब किये, अब इसमें बदलाहट करना मुझे बहुत मुश्किल होगी। उस महिला ने कहा, कुछ जो और खर्च हो ले लेना, मगर नाक तो ठीक कर ही दो। पिकासो ने कहा, बाई, तू मुझे माफ कर ! क्योंकि मुझे पता ही नहीं है कि नाक मैंने बनाई कहां है ? अब मैं कहां खोजूं ?

लेकिन ऐसे चित्रों को लोग लटका रहे हैं। चित्रकार को भी पता नहीं कि नाक कहां है ! मगर पिकासो के चित्र होने चाहिए; तो तुम समृद्ध हो। तो अमरीका में पागलपन है। जिसके घर में पिकासो के चित्र नहीं हैं, वह मध्यमवर्गीय है; आभिजात्य नहीं है। पिकासो, डाली, वानगाग, सीजां, इनके चित्र होने ही चाहिए। तब तुम सुसंस्कृत हो। तब तुम्हें कला की परख है।

लेकिन यह सब दूसरों को दिखा कर चल रहा है।

मैं ऐसे बहुत से घरों को जानता हूं जिनमें किताबों-किताबों की आलमारियां सजी हैं। लेकिन वे किताबें अभी पढ़ी नहीं गयीं। क्योंकि मैंने उन किताबों को खोल कर देखा है, उनके पन्ने तक कई जुड़े हैं ! तो उनको पढ़ा तो किसी ने नहीं है।

मैं एक घर में इसी तरह मेहमान था, एक महाराजा के घर में। उनकी बड़ी लाइब्रेरी थी ! वे अपनी लाइब्रेरी मुझे दिखाने ले गये। मैंने दो-चार किताबें खोल कर देखीं, उनके पन्ने तक जुड़े थे। मैंने पूछा, इनको किसी ने पढ़ा ? महाराजा हंसने लगे। उन्होंने कहा, पढ़ने का सवाल ही नहीं है। ये सुंदर मालूम पड़ती हैं। इनसे घर की शोभा है। किताबें और शोभा !

तुम किसको धोखा दे रहे हो !

मगर यह हमारे जीवन का ढंग है। गरीब से लेकर अमीर तक भी ऐसे ही जी रहा है। वह जीने की शैली बदलनी होगी; अन्यथा तुम्हारे जीवन में कभी परमात्मा का आगमन नहीं हो सकता है।

जिन्दगी की कला धीरे-धीरे सीखनी पड़ती है। एकदम नहीं आ जाती। इसलिए मैं कुछ यह नहीं कह रहा हूं कि तुम आत्मनिंदा से भर जाओ। यह स्वाभाविक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम जिस दुनिया में पैदा हुए हो, वहां हर आदमी चटक-मटक से जी रहा है, तुम उन्हीं के बीच बड़े हुए हो, तुमने भी उनकी आदतें सीख ली हैं।

ज़िन्दगी के साज़ को धीरे-धीरे छेड़िये
तार हैं डरे हुये
दर्द से भरे हुये
दम बख़ुद, मरे हुये
जख़्म जब हरे हुये
रंग क्या बहायेगा
साज़ टूट जायेगा
ज़िन्दगी के साज़ को धीरे-धीरे छेड़िये
फूल ले के आइये
प्रेम रस पिलाइये
साज़ को मनाइये
फिर इसे बजाइये
साज़ है कली नहीं
रंग की डली नहीं।
ज़िन्दगी के साज़ को धीरे-धीरे छेड़िये
लो वो तार हिल पड़े
बेदरेग़ खिल पड़े
अब सुरों में दिल पड़े
ज़र्ब-ए-मुत्तसिल पड़े
रंग खुल के आयेगा
अब्र घिर के छायेगा
ज़िन्दगी के साज़ को धीरे-धीरे छेड़िये

ज़ल्दी नहीं। ये काम जल्दी में होने वाले नहीं हैं। धीरजपूर्वक, धैर्यपूर्वक, शान्तिपूर्वक अपने जीवन का पुनरावलोकन करो। और फिर धीरे-धीरे, आहिस्ता-आहिस्ता एक-एक पहलू को बदलना शुरू करो। ज़िन्दगी के तार को धीरे-घीरे छेड़िये। ये तार नाजुक हैं, तोड़ मत डालना। कुछ लोग जल्दबाजी करते हैं, परिणाम बुरे होते हैं। जैसे तुमने सुना कि यह चटक-मटक जिन्दगी बेकार है, तुमने कहा फिर छोड़ो-छाड़ो। भाग गये जंगल, हो गये महात्मा। मगर वहां तुम करोगे क्या ? जिन्दगी के जो पुराने ढांचे थे वे तुम्हारे साथ चले जाएंगे। वहां भी तुम क्या करोगे ?

तुमने महात्मा देखे ? नहात्मा भी कम-से-कम एक आईना रखते हैं अपने झोले में। क्योंकि जब भभूत लगाते हैं और तिलक-चंदन-मंदन लगाते हैं, तो आईने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरूरत तो पड़ती है। आईने में बिना देखे चन्दन इरछा-तिरछा लग जाए, तिलक उल्टा-सीधा हो जाए...अलग-अलग पंथों के अलग-अलग तिलक हैं, तो बड़ी होशियारी से तिलक लगाना पड़ता है ! राख कहीं छूट न जाए, पूरे शरीर पर पोतनी पड़ती है, जगह-जगह...एक ढंग है उसका भी, एक शैली है उसकी भी। उसकी भी एक कला है। सो साधु को भी आईना रखना पड़ता है। यही सज्जन कल आईने के सामने घंटों बाल सजा रहे थे; अब भी आईने के सामने बैठे घंटों बालों को बिगाड़ रहे हैं ! उनमें धूल-धवांस भर रहे हैं। यही सज्जन कल आईने के सामने खड़े होकर पाउडर चेहरे पर पोतते थे, यही अब राख पोत रहे हैं—मगर आईना वही-का-वही। और भीतर आदमी वही-का-वही।

कल तक ये सुंदर रेशमी वस्त्र पहनते थे और आईने के सामने खड़े होकर छाती फुलाते थे, प्रसन्न होते थे, आज ये टाट के वस्त्र पहन रहे हैं। लेकिन उनको भी आईने के सामने खड़े होकर पहन रहे हैं। भेद कहीं कुछ भी न पड़ा। बात कुछ बनी नहीं। बात और बिगड़ गयी। इसलिए जल्दी मत करना, जल्दी में अति हो जाती है, एक अति से आदमी दूसरी अति पर चला जाता है—और अतियों पर जाने से क्रांति नहीं होती, क्रांति होती है मध्य में ठहरने से।

ज़िन्दगी के साज़ को धीरे-धीरे छेड़िये

तार हैं डरे हुए
द्रर्द से भरे हुए
दम बख़ुद, मरे हुए
जख़्म जब हरे हुए
रंग क्या बहायेगा
साज़ टूट जायेगा

ज़िन्दगी के साज़ को धीरे-धीरे छेड़िये
फूल ले के आइये
प्रेम रस पिलाइये
साज़ को मनाइये
फिर इसे बजाइये
साज़ है कली नहीं
रंग की डली नहीं।

ज़िन्दगी के साज़ को धीरे-धीरे छेड़िये
लो वो तार हिल पड़े
बेदरेग़ खिल्त पड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब सुरों में दिल पड़े
ज़र्ब-ए-मुत्तसिल पड़े
रंग खुल के आयेगा
अब्र घिर के छायेगा

ज़िन्दगी के साज़ को धीरे-धीरे छेड़िये

उठेंगे गीत, बजेगा नाद, बदलियां घिरेंगी, तुम्हारा नृत्य व्यर्थ नहीं जाएगा, बादल बरसेंगे, झूम-झूम बरसेंगे, लेकिन जिंदगी की कला आते-आते आती है ! और संन्यास जीवन की सबसे बड़ी कला है !

भीर-भार से संत भागि के लुकत हैं।
अरे हां, पलटू सिद्धाई को देखि संतजन थुकत हैं।।

पलटू कहते हैं कि संत भीड़-भाड़ से बचते हैं; छिपते हैं। भीड़-भाड़ है किसकी ? बुद्धुओं की। भेड़ों की है भीड़ें। संत तो केवल उनमें रस लेते हैं जो शिष्य हैं। जिनकी क्षमता झुकने की है। और जिनका प्रण अपने को बदलने का है। और जिनके जीवन में एक संकल्प उठा है जो कोई भी बाधा नहीं मानेगा। और जिन्होंने तय कर लिया है कि जीवन रहे कि जाए लेकिन पंखों को खोलेंगे और सूरज की यात्रा करेंगे। संत तो केवल शिष्यों के हैं; संसार के नहीं हैं, बाजार के नहीं हैं, भीड़-भाड़ के नहीं हैं। संत तो केवल सिर्फ चुने हुए लोगों के लिए हैं।

मुझसे लोग आ-आकर कहते हैं कि आश्रम सबके लिए क्यों नहीं खुला हुआ है ? सबको आश्रम की जरूरत नहीं है।...उनके लिए निश्चित खुला हुआ है जिनको जरूरत है।...उनको कसौटी देनी होगी। उनको परीक्षा देनी होगी। मुझसे लोग कहते हैं कि आपसे हर कोई हर किसी समय आकर क्यों नहीं मिल सकता ? इसीलिए कि अपात्रों की भीड़ यहां इकट्ठी नहीं करनी है। हर कोई हर समय आकर मिल सके, तो मैं पात्रों के लिए तो अनुपलब्ध हो जाऊंगा और अपात्रों की भीड़ से घिर जाऊंगा।

बहुत-सी सीढ़ियां पार कर सकोगे तो ही मेरे पास आ सकोगे। और जितनी देर करोगे उतनी ही ये सीढ़ियां और-और बढ़ती जाएंगी। मैं और दूर-दूर छिपता जाऊंगा। ताकि मैं सिर्फ उन्हीं को उपलब्ध हो सकूं, जिनको सच में ही जरूरत है। अमृत को पीने की योग्यता भी तो संग्रहीत होनी चाहिए। तुम अपने गंदे पात्र लेकर आ जाओ, क्या होगा ? पहले पात्रों को साफ करो।

भीड़-भाड़ आने को उत्सुक होती है। उसकी उत्सुकता बस उत्सुकता होती है, कुतूहल होता है। उसके कुछ प्रयोजन नहीं है। उसकी कुछ खोज नहीं है। खोज होगी, तो व्यक्ति दाम चुकाने को राजी होता है, कीमत चुकाने को राजी होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। खोज हो, तो आदमी सब दांव पर लगाने को राजी होता है। भीड़ कुछ दांव पर लगाने को राजी नहीं है—भीड़ तो उल्टा प्रसाद चाहती है। पंडित-पुजारी भीड़ों में उत्सुक होते हैं। पंडित-पुजारी भीड़ों में जीते हैं। संत और पंडित में भेद है। संत छिप जाता है।

भीर-भार से संत भागि के लुकत हैं।
अरे हां, पलटू सिद्धाई को देखि संतजन थुकत हैं।

और जब संत के जीवन में सिद्धियों का आविर्भाव होता है, तो वे उन पर थूक देते हैं। जो संत सिद्धियों का प्रदर्शन करने लगे, वह बाजारू है। उसका कोई मूल्य नहीं। उसका अस्तित्व के जगत में कोई अर्थ, कोई महिमा नहीं; कोई गरिमा नहीं। हालांकि भीड़-भाड़ उसके पीछे खूब इकट्ठी होगी। क्योंकि भीड़-भाड़ मदारियों में रस लेती है।

भीड़-भाड़ तो तमाशाई है। कहीं कोई ताबीज निकाल दे हाथ से कि धूल निकाल दे कि बस भीड़-भाड़ को बड़ा रस आ गया ! कि कोई घड़ी प्रगट कर दे, कि भीड़-भाड़ के रस का क्या कहना ! कि भीड़-भाड़ को भगवान मिले ! ! यह राख कहीं भी मिल जाती। यह तो साधारण मदारी, सड़क छाप मदारी निकाल देते। इसमें कुछ भी नहीं है। इसका कोई मूल्य नहीं है। मगर भीड़ की बुद्धि कितनी ! उसकी क्षमता कितनी ! उसकी समझ कितनी ! उसके पास आंखें कहां हैं पारखी की ? कंकड़-पत्थरों से राजी हो जाती हैं। संतजन तो हीरे बांटते हैं। मगर हीरे तो उन्हीं के लिए हैं जो पारखी हैं। पहले पारखी बनो, तो संतों से मिलना हो सकता है।

क्या लै आया यार कहा लै जायगा।
संगी कोऊ नाहिं अंत पछितायगा।।
सपना यह संसार रैन का देखना।
अरे हां, पलटू बाजीगर का खेल बना सब पेखना।।

यह जगत तो बस ऐसा ही है जैसे जादूगर का खेल। बजाया डमरू जादूगर ने, फूंके मंत्र, ऊंची लफ्फ़ाजी की बातें कीं, झूठे आम उगा दिये—वे सिर्फ प्रतीत होते हैं, हैं नहीं। सम्मोहन है। तुम्हारी आंखों को दिया गया धोखा है। तुम्हें भरोसा दिला दिया, इसलिए दिखायी पड़ रहा है।

मनुष्य के मन की एक महत्वपूर्ण बात समझ लेना : उसे जिस बात का भरोसा आ जाए, वही उसे दिखाई पड़ने लगती है। अगर तुम्हें भूत-प्रेत में भरोसा है, तुम्हें भूत-प्रेत दिखाई पड़ेंगे। तुम हर बात में से भूत-प्रेत देख लोगे।

मैं एक गांव में कुछ दिन रहा। मेरे साथ एक मित्र रहते थे। वे बार-बार कहते थे, कारण-अकारण कहते थे : मैं भूत-प्रेत नहीं मानता। मैंने उनसे कहा कि तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतनी बात कहते हो, इससे जाहिर है कि तुम भूत-प्रेत मानते हो। नहीं तो जरूरत क्या ? मैंने एक दफे नहीं कहा ! अगर भूत-प्रेत हैं ही नहीं, तो मानना क्या और नहीं मानना क्या ? तुम नहीं मानते, यह कहते जरूर हो, लेकिन लगता है भीतर कहीं मानते हो, उस मान्यता को छिपाने की कोशिश में लगे हो। उन्होंने कहा, आप भी उल्टे आदमी हैं; आपकी उल्टी खोपड़ी है ! मैं कहता हूं कि नहीं मानता और आप सिद्ध करना चाहते हैं कि मानते हो !

मैंने कहा, फिर ठहरो। मैं जानता हूं कि भूत-प्रेत कहां हैं। आज ही रात निर्णय हो जाएगा। उन्होंने कहा, क्या मतलब ? मैंने कहा, यह जो सामने मकान है उसके ऊपर की मंजिल पर तुम आज रात सो जाओ, बस आज तय हो जाएगा। सुबह पता चल जाएगा। सुबह भी मैं समझता हूं नहीं हो पाएगी। आधी रात में ही तय हो जाएगा। अब वह तो फंसे थे ! एकदम से झुक भी नहीं सकते थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से संस्कृत की बड़ी उपलब्धियां लेकर आये थे। पी. एच. डी. थे। अकड़ भी बड़ी थी। कहा कि मैं मानता ही नहीं हूं ! तो मैंने कहा कि मैं विवाद भी नहीं कर रहा हूं कि तुम मानो। जब है ही, तो तुम्हारे न मानने से क्या होता है ?

मैंने उनके सोने का इंतजाम सामने के मकान में कर दिया। सामने के मकान में कुछ भी नहीं था, केरोसिन तेल बेचने वाले एक आदमी के खाली डिब्बे ही डिब्बे भरे थे। पूरे मकान में खाली डिब्बों का ही जमाव था। वे मेरे परिचित थे, मैंने उनसे कहा कि भाई, इतना कर दो। उन्होंने कहा, मामला क्या है ? मैंने उनसे कहा कि इसकी फिक्र न करो, मामला रात में ही जाहिर हो जाएगा।

जैसे-जैसे सांझ करीब आने लगी, पी. एच. डी. के पैर के नीचे की जमीन खिसकने लगी। वे मुझसे बोले, क्या आप सच में मानते हैं कि भूत-प्रेत होते हैं ? मैंने कहा, यह बात ही फिजूल है ! आज जब तय ही हो जाना है, तो इसकी बात ही क्या करनी है ! मैं तर्क में नहीं भरोसा करता, अनुभव में। सांझ होते-होते उनका चेहरा पीला पड़ने लगा, उनके हाथ कांपने लगे। मैंने उन्हें देखा कि वे बाथरूम में बैठ कर राम-राम जप रहे हैं। गायत्री मंत्र पढ़ रहे हैं—जो भी उन्हें मालूम था...हनुमान चालीसा ! जाते वक्त छोटी किताबिया ले जाने लगे, मैंने कहा, यह क्या है ? उन्होंने कहा, यह हनुमान चालीसा है। मैंने कहा, किसलिए ले जा रहे हो ? जब भूत-प्रेत होते ही नहीं तो हनुमान बिचारे क्या करेंगे ? इनकी जरूरत क्या है ? उन्होंने कहा कि मैं तो यह हमेशा रखता हूं अपने पास। भूत-प्रेत से क्या लेना-देना, मुझे हनुमान से प्रेम है। मैंने कहा, तुम्हारी मर्जी !

गर्मी के दिन थे। उनका बिस्तर ऊपर लगवा दिया और नीचे मैंने ताला डाल दिया। कहने लगे कि चाभी तो मुझे दे दो। मैंने कहा, चाभी तुम्हें क्यों दूंगा ? वे लोग जब आएंगे रात चाभी मांगने, फिर मैं क्या करूंगा ? उन्होंने कहा, कौन लोग ? मैंने कहा, वही जिनको भूत-प्रेत कहते हैं। आखिर वे चाभी तुझसे मांगेंगे ! तुमने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो हनुमान चालीसा रख लिया, वे मुझे झंझट देंगे; मैं सोना चाहता हूं शान्ति से, सो चाभी उनको देकर मैं शान्ति से सो जाऊंगा। उन्होंने कहा, आपकी बातें कुछ समझ में नहीं आतीं; कैसी चाभी और कैसे भूत-प्रेत ! मैंने कहा, सब समझ आ जाएगा।

उनको ऊपर करवा आया। उनको ले जाना पड़ा मुझे ऊपर; नहीं तो वे हजार बहाने निकालते थे कि मैं अभी क्यों जाऊं, अभी तो जल्दी है, अभी तो मैं सोऊंगा भी नहीं। मैंने कहा कि तुम...मुझे भी सोना है ! ग्यारह बजे उनको मैं ऊपर कर आया।

गर्मी के दिनों में खाली डिब्बे टीन के हों तो वे सिकुड़ते हैं, फैलते हैं। उनमें आवाज होनी शुरू होती है। और डिब्बों के ऊपर डिब्बे लगे हों तो एक की आवाज दूसरे में और दूसरे की तीसरे में... !

बस कोई बारह बजा होगा, साढ़े बारह...उन्होंने एकदम चीख मारी। वह मुझे पता ही था। मैंने मकान-मालिक को भी बिठा रखा था कि आज तुम खेल देखो ! चीख मारी, मुहल्ला इकट्ठा हो गया, वे ऊपर छज्जे पर खड़े, एकदम कंप रहे, थर-थर कंप रहे। मैंने उनसे कहा कि उतर कर आ जाओ, हम दरवाजा खोल देते हैं, उन्होंने कहा कि मैं सीढ़ियों पर जा ही नहीं सकता। वहीं तो हैं वे लोग ! और हद्द हो रही है, एक डिब्बे में से दूसरे डिब्बे में जा रहे हैं ! एक नहीं हैं, हजारों मालूम होते हैं। मैंने कहा, भई, और तो कोई दूसरा दरवाजा है नहीं निकालने का, तुम आओ उतर कर, मैं दरवाजा खोल दूं नीचे; सीढ़ियां तो उतरो। उन्होंने कहा कि नहीं, भूल कर नहीं; नसेनी लाओ और यहीं से उतरूंगा। नसेनी लाकर दो आदमियों को चढ़ा कर उनको पकड़कर उतारना पड़ा। बुखार नपवाया तो एक सौ चार डिग्री बुखार। पसीना-पसीना हो रहे। डाक्टर को बुलाना पड़ा, दवा दिलवानी पड़ी, रात सुलवाया। रात-भर हनुमान चालीसा अपनी छाती से लगाए रहे।

फिर मैंने उनसे कहा, अब आइन्दा मत कहना कि भूत-प्रेत नहीं होते। तुम मानते हो कि होते हैं। उस मकान में कुछ भी न था, केवल टीन के डिब्बे थे; तुम पीएच.डी. हो, इतनी तो अकल होनी चाहिए कि टीन के खाली डिब्बे होंगे तो गर्मी में सिकुड़ेंगे-फैलेंगे, खटर-पटर होगी। फिर एक-दूसरे के ऊपर कतारबंद लगे हैं, तो खटर-पटर एक-दूसरे में जाएगी। उन्होंने कहा कि अब तुम मुझे फिर दोबारा फंसाने की कोशिश मत करो ! अब मैं उस मकान में कदम नहीं रख सकता। ऐसी की तैसी पीएच.डी. की ! जान बची और लाखों पाए, लौट कर बुद्धू घर को आए। उन्होंने कहा, अब मुझे...मुझे पक्का विश्वास है कि होते हैं ! अब आपसे मुझे विवाद नहीं करना है। इसी विवाद में मैं नाहक झंझट में पड़ गया। फिर मैं उनको बहुत समझाने की कोशिश किया कि नहीं होते, वे सुनें ही नहीं।

तुम जो मान लो, वह हो जाता है। तुम्हारी मान्यता तुम्हारे चारों तरफ एक संसार निर्मित करती है। न तो तुम कुछ लाए हो, न कुछ तुम ले जाओगे, जो तुमने बना लिया है संसार, बस मान्यता का है। किसी स्त्री के साथ सात चक्कर लगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये, वह तुम्हारी पत्नी हो गयी ! खूब खेल खेल रहे हो ! बैण्ड बाजा बजा, शहनाई बजी, कोई भोंदू को पकड़ लाए और उसने मंतर-तंतर पढ़ दिये और तुम्हें सात चक्कर लगवा दिये और गांठ बांध दी—और बंध गयी !

एक सज्जन मुझसे कहते थे, उन्हें पत्नी छोड़नी है, मगर कैसे छोड़ें, गांठ बंध गयी, सात चक्कर लग गये हैं; मैंने कहा, तुम पत्नी को लिवा लाओ, अगर वह भी राजी हो, तो मैं सात उल्टे चक्कर लगवा दूं। और गांठ खोल दूं। और मंतर-तंतर, जितने तुम कहो उतने पढ़वा दूं। उल्टे पढ़वा देंगे इस बार ! सो मामला खत्म हो जाएगा। आखिर गांठ बंधी है न, तो गांठ खुल सकती है ! सात चक्कर ऐसे लगाए, उल्टे उस दिन से वे यहां आए ही नहीं हैं। वे तो बात कर रहे थे, जैसा कि सभी लोग करते हैं कि कोई सार नहीं है। संसार में...पत्नी, बच्चे, मुश्किल हो गयी... ! उन्होंने यह नहीं सोचा था कि मैं इतना सुगम उपाय बताऊंगा, कि उल्टे फेरे डाल लो ! क्या लेकर आए थे ? पलटू कहते हैं—

क्या लै आया यार कहा लै जायगा।
संगी कोऊ नाहिं अंत पछितायगा।।
सपना यह संसार रैन का देखना।

यह सब अंधेरे में तुमने अपने सपनों का एक जाल बुन लिया है, जिसको तुम संसार कहते हो। यह सब टूटा पड़ा रह जाएगा। यहीं-का-यहीं पड़ा रह जाएगा। यह बाजार उखड़ जाएगी। मौत आएगी और तुम्हारा किया हुआ सब कुछ अनकिया हो जाएगा।

अरे हां, पलटू बाजीगर का खेल बना सब पेखना।

ये सब दृश्य जो तुम देख रहे हो, माया के, मोह के, लगाव के, आसक्ति के, अपने, पराये, मेरा, तेरा...कैसे लड़-लड़ पड़ते हो इंच-इंच जमीन पर, तलवारें खिंच जाती हैं, जिन्दगी मुकदमों में बीत जाती है—और सब पड़ा रह जाएगा।

और मजा तो देखो—

जीवन कहिये झूठ, साच है मरन को।

पलटू कहते हैं, यह जीवन तो तुम्हारा बिलकुल झूठ है, इससे तो तुम्हारी मौत कहीं ज्यादा सच है !

मूरख, अजहूं चेति, गहौ गुरु-सरन को।।

अभी भी जाग जाओ, इसके पहले कि मौत आए, जाग जाओ ! यह सपने को सत्य न समझो। इस सपने के प्रति मर जाओ। सपने के प्रति मर जाना संन्यास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। और सपने के प्रति जो मर गया, उसके भीतर एक होश का दीया जलता है।

लेकिन यह संभव है तभी, तुम जब किसी गुरु के साथ जुड़ जाओ। बुझा दीया जले दीये के पास सरक आए, तो ज्योति से ज्योति जले !

मांस के ऊपर चाम, चाम पर रंग है।
अरे हां, पलटू जैहै जीव अकेला कोउ ना संग है।।

है क्या अपने पास ? हड्डी-मांस-मज्जा। अस्थिपंजर।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर रही थी। दोनों में बातचीत होने लगी कि मृत्यु के बाद आत्मा बचती है कि नहीं ! पत्नी कहती थी बचती है, मुल्ला कहता था कि नहीं बचती। असल में मुल्ला चाहता नहीं था कि बचे। क्योंकि पत्नी से जिन्दगी-भर परेशान रहा था और अब और संभावना कि बचेगी पत्नी फिर भी ! ...और अभी तो कम-से-कम देह में बन्द थी; तो घर आए तो ही सताती थी; देहमुक्त हो जाएगी तो पता नहीं कहां-कहां सताए ! मधुशाला ही में पहुंच जाए ! किसी और स्त्री से मुल्ला अपना राग-रंग रचा रहा हो, वहीं जाकर ऊधम करने लगे ! मुल्ला कह रहा था कि नहीं बचती। पत्नी कहती थी—बचती है ! आखिर बात यहां तक बढ़ी कि पत्नी ने कहा कि फिर ऐसा करो, कि हम दोनों में से जो पहले मरे, वह यह कसम खाए कि मरते ही आकर दूसरे को खबर देगा कि देखो मैं जिन्दा हूं। मैं अभी भी हूं।

मुल्ला ने कहा, यह ठीक है। शर्त रही।

फिर थोड़ा डरा ! कह तो गया जोश में...फिर कहा, लेकिन एक बात ख्याल रखना कि अगर कभी आओ तो दिन में आना, रात में नहीं ! पत्नी ने कहा, क्यों, रात में तुम्हें क्या डर है ? आखिर मैं तुम्हारी पत्नी हूं। उन्होंने कहा, वह तो मैं समझा कि मेरी पत्नी अभी हो ! मरने के बाद पता नहीं किस रूप में प्रगट होओ ? नहीं। दिन में आना, भरी रोशनी में आना ! और ऐसे भी रात में तुम आओ तो रात में तुम मुझे घर में पाओगी नहीं ! क्योंकि तुम मर गयी, इसका यह मतलब नहीं कि दुनिया में सब स्त्रियां मर गयीं ! इसलिए बेकार परेशान मत होना। या तो मैं मधुशाला में रहूंगा या किसी स्त्री के पास रहूंगा। तुम तो दिन में आना, भरी दोपहरी में और एक ही बार आना काफी है।

पत्नी ने कहा, अच्छा ठीक, तो दिन में ही आऊंगी ! भरी दोपहरी में ही आऊंगी। मुल्ला ने फिर थोड़ा सोचा ? फिर पत्नी का हाथ हाथ में लिया और कहा, हे प्यारी, मुझे क्षमा करो, मैं मानता हूं कि आत्मा बचती है, आने वगैरह की कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि भरी दोपहरी में भी तुम मेरी छाती दहला दोगी ! अभी जिन्दा में ही दहला देती हो, तुम्हें देखकर ही मेरे पैर कांपने लगते हैं, घर की तरफ आते डरता हूं। कल ही रात की तो बात है, रास्ते पर चल रहा था, दो बज गये, चक्कर काट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा था। आखिर सिपाही ने कहा कि नसरुद्दीन, दो बज गये, मैं तुम्हें देख रहा हूं कि कम-से-कम दो घंटे से तुम यहीं-यहीं चक्कर काट रहे हो। तुम्हारे पास यहां बार-बार चक्कर काटने के लिए कोई उत्तर है ? नसरुद्दीन ने कहा, अगर उत्तर ही होता तो घर ही क्यों न चले गये होते ! उत्तर नहीं है, वही सोचने के लिए चक्कर काट रहा हूं कि घर जा कर पत्नी को क्या उत्तर देना ? और जैसे-जैसे देर होती जा रही है वैसे-वैसे मुसीबत होती जा रही है। हवलदार साहब, अगर आपके पास कोई उत्तर हो तो आप बताओ ! कभी-कभी यह मुसीबत आप पर भी तो आती होगी !

घर आते वक्त पति को उत्तर तैयार करना पड़ता है। घर आते वक्त पति की वही हालत होती है जो परीक्षा में जाते वक्त विद्यार्थियों की होती है। और वे कोई भी उत्तर तैयार करें, पत्नी मानने को राजी नहीं। वह हर उत्तर में से कुछ-न-कुछ भूल-चूक निकाल लेती है।

यह हमने एक संसार बना रखा है। इसमें सुख तो कुछ पाया नहीं, दुख बहुत पाया है, पीड़ा बहुत पायी है। चाहा तो सुख है, मगर मिला नहीं।

आदर्श सोते हैं
आईने रोते हैं।

मनमानी करके रहेंगे
आप कौन होते हैं
अंधे भाई नयन सुख
सूरज के पोते हैं
दर्द बेहिसाब है
बेहिसाब रोते हैं
सुख उगता ही नहीं
सुख रोज बोते हैं।

रोज बोते हो सुख, आशा-अपेक्षा में, आकांक्षा में, मगर सुख उगता कब ? जब उगता है तब दुख उगता है। स्वर्ग चाहते हो, मिलता नर्क है। जरूर कहीं कोई मौलिक भूल हो रही है। तुम झूठ को सच मान रहे हो।

भूलि रहा संसार कांच की झलक में।
बनत लगा दस मास, उजाड़ा पलक में।।

कितना जिन्दगी में मेहनत करके इसको बसा पाते हो, इस सपने को ! और उजड़ने में पलक नहीं लगती। इधर सांस टूटी कि सब उजड़ गया।

रोवनवाला रोया आपनि दाह से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और ध्यान रखना, जो लोग रोएंगे तुम्हारे मर जाने पर, वे तुम्हारे लिए नहीं रो रहे हैं, वे अपने लिए रो रहे हैं। पत्नी रोएगी, पति रोएगा, बच्चे रोएंगे, माता-पिता रोएंगे, मित्र रोएंगे, मगर ध्यान रखना, इस भ्रांति में मत पड़ना कि वे तुम्हारे लिए रो रहे हैं; वे अपने लिए रो रहे हैं। पत्नी रो रही है कि अब क्या होगा ? यह पति तो खिसक गया, अब अपना क्या होगा ? बच्चे रो रहे हैं कि पिता चल बसे, अब अपना क्या होगा ? मां-बाप रो रहे हैं कि बेटा चल बसा, अब बुढ़ापे में अपने हाथ की लाठी कौन ? यहां कोई किसी और के लिए नहीं रोता है, यहां सब अपने लिए रोते हैं।

अरे हां, पलटू सब कोई छेंके ठाढ़, गया किस राह से।।

और जब तुम्हारी जिन्दगी उड़ने लगेगी—जैसे कपूर उड़ जाए—जब तुम्हारे प्राण-पखेरू उड़ने लगेंगे, तो सभी रोक कर खड़े होंगे राह, मगर कोई छेड़ न पाएगा, रोक न पाएगा। क्योंकि तुम अदृश्य हो। लाख पत्नी सिर पटके, रोक न सकेगी। लाख पति रोए, रोक न सकेगा। और सब रोकने इत्यादि की बातें दिन-दो दिन की हैं। फिर पत्नी बसा लेगी नया सपना, फिर पति बसा लेगा नया सपना।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मरी। मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी का एक प्रेमी था। और सब मित्र और वह प्रेमी भी आखिरी विदाई में सम्मिलित हुए। मरघट पर वह प्रेमी ऐसा छाती पीट-पीट कर रो रहा था जैसे वही असली पति हो। आखिर नसरुद्दीन से न रहा गया और उसने जाकर उसके कंधे पर हाथ रखा और कहा, भाई मेरे, ज्यादा दुख न पाओ, मैं फिर विवाह करूंगा। घबड़ाओ मत। इतने न पछताओ, मैं फिर विवाह करूंगा।

कच्चा महल उठाय, कच्चा सब भवन है।
दस दरवाजा बीच झांकता कवन है।।

'कच्चा महल उठाय, कच्चा सब भवन है।' यहां तुम जो बना रहे हो, सब कच्चा है। यहां तो पक्की सिर्फ एक चीज बन सकती है, वह है तुम्हारी आत्मा की प्रौढ़ता; वह है तुम्हारी चेतना का जागरण।

दस दरवाजा बीच झांकता कवन है ।।

जो इन दस दरवाजों, इन्द्रियों के भीतर छिपा है, उसमें जो झांक ले, उसने पक्का महल बनाया।

कच्ची रैयत बसै, कच्ची सब जून है।
अरे हां, पलटू निकरि गया सरदार, सहर अब सून है।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आज नहीं कल हंसा तो उड़ जाएगा, सूना शहर पड़ा रह जाएगा। और इस शहर को बसाने में तुमने कितना श्रम किया था ! कितनी मेहनत उठाई थी। क्या नहीं कर छोड़ा था ! सब दांव पर लगा दिया था। लेकिन सब पत्तों के घर हैं; हवा का झोंका आया, गिर जाते हैं। कागज की नावें हैं; चल भी नहीं पातीं कि डूब जाती हैं। इन पर भरोसा मत करो।

हाथ गोड़ सब बने, नाहिं अब डोलता।

एक क्षण में, श्वास क्या उड़ी, हाथ-पैर सब वैसे-के-वैसे हैं लेकिन अब डोलता नहीं।

नाक कान मुख ओहि, नाहिं अब बोलता।।

नाक-कान सब वैसे-के-वैसे हैं, लेकिन अब बोलता नहीं।

काल लिहिसि अगुवाय, चलै ना जोर है।

मौत आ गयी, काल द्वार पर खड़ा हो गया, धक्के दे कर ले चलने लगा, अब उस पर कुछ जोर नहीं चलता। एक क्षण भी रुकने के लिए नहीं मांगा जा सकता। एक क्षण की छुट्टी नहीं मिलती। चाहे तुम लाख कहो कि मैं कोई साधारण आदमी नहीं, 'वी. वी. आई. पी.' हूं; लाख कहो कि मैं प्रधानमंत्री, मैं राष्ट्रपति, मैं यह, मैं वह, मौत कुछ सुनती नहीं। मौत के पास ये कोई प्रमाणपत्र चलते नहीं। एक क्षण का भी अवसर नहीं दिया जा सकता।

आया मूठी बांधि, पसारे जायगा।

और कैसा मजा है, कैसा मजाक है, बच्चा आता है तो मुट्ठी बंधी होती है और जाता है तो हाथ खुले होते हैं। यह तो खूब उल्टी बात हो गयी। खुले हाथ आते, बंधे हाथ जाते तो कुछ समझ में आती बात कि आए थे खाली हाथ, कुछ लेकर गये ! यहां हालत उल्टी है। बच्चा बंद मुट्ठी आता, शायद कुछ लेकर आता है; कुछ अदृश्य; एक निर्दोषता लेकर आता है; एक सरलता, एक स्वच्छता, एक ताजगी। जैसे ओस की बूंद सुबह ताजी-ताजी, कि कमल के फूल की पंखुड़ी सुबह ताजी-ताजी। कोरा आता। कुछ भी गुदा नहीं, कुछ भी लिखा नहीं, कोरा कागज। जिस पर कोई संस्कार नहीं, कोई लिखावट नहीं। एक शून्य की तरह आता। एक मौन की तरह आता। न शब्द हैं, न विचार हैं, न भाषा है। न वासना है कोई अभी, न कामना है कोई अभी। न बीता कल है, न आगा कल है। क्षण-क्षण में पुलकित होता, आनंदित होता।

और प्रामाणिक होता है बच्चा। ऑथेन्टिक होता है। धोखा नहीं देता। अगर क्रोध है तो क्रोध प्रगट कर देता है और प्रेम है तो प्रेम प्रगट कर देता है। तर्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तर्क की संगति में भी नहीं उलझा होता। अभी कह रहा था कि तुम्हारे बिना जी न सकूंगा और अभी नाराज को गया और कहता है, अब तुम्हारी शकल दुबारा नहीं देखूंगा—और फिर घड़ी भर बाद तुम्हारी गोदी में बैठा है। क्षण-क्षण जीता है। स्वस्फूर्त।

जरूर कुछ लेकर आता है। कुछ बहुमूल्य। इसीलिए तो जीसस ने कहा है : अगर मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश पाना हो तो तुम्हें पुनः छोटे बच्चे की भांति हो जाना पड़ेगा।

आया मूठी बांधि, पसारे जायगा।
छूछा आवत जात, मार तू खायगा।।

और जितने तुम छूछे जाओगे उतने ही मार खाओगे। क्योंकि परमात्मा के समक्ष, अस्तित्व के समक्ष उत्तर क्या है तुम्हारे पास देने को ? कैसे तुमने जीवन गंवाया, कुछ हिसाब...कुछ तो कह सको कि ऐसे गंवाया। कि बुद्धू की तरह खड़े रह जाओगे ! कहते न बनेगा, जबान लड़खड़ायेगी, क्योंकि जिसमें भी तुमने जीवन गंवाया, वह सब तुम्हें फिजूल दिखाई पड़ेगा। अब तुम उसका उत्तर नहीं बना सकते। वह सब सपना था। और सपने को तुमने सच मान लिया था। आंख न उठेगी !

किते बिकरमाजीत साका बांधि मरि गये।

और साधारण लोगों की तो छोड़ दो, बड़े-बड़े सम्राट, विक्रमादित्य जैसे सम्राट, जिनके नाम से विक्रम संवत् चलता है; जिनके नाम से संवत् बना, जो इतनी बड़ी छाप छोड़ गये समय पर...

किते बिकरमाजीत साका बांधि मरि गये...

संवत् रूपी कीर्ति-स्तंभ जो बना गये, समय पर ऐसी अमिट रेख छोड़ गये, वे भी पानी में खो गये, धूल में खो गये। उनका भी कहां पता है ? कभी होंगे तो बहुत अकड़ कर चले होंगे; सोने के सिंहासनों पर उठे होंगे, धूल में पैर न पड़े होंगे, कांटों से परिचित न हुए होंगे; धूप न लगी होगी, पसीना न बहा होगा; फूलों में, फूलों की गंध में, इत्रों में डूबे रहे होंगे; गुलाबजल में नहाए होंगे। और फिर वही देह, गुलाबजलों में नहायी देह एक दिन मिट्टी में मिल जाती है। जब बड़े-बड़े ऐसे मिट जाते हैं, छोटे-छोटों की तो बिसात क्या !

अरे हां, पलटू रामनाम है सार संदेसा कहि गये।।

और विक्रमादित्य जैसे लोग भी जब मर जाते हैं, जब अर्थी उठती है तो मालूम है हम क्या कहते हैं ? 'रामनाम सत्त है'। हर अर्थी के साथ हम कहते हैं : 'रामनाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्त है, सत्त बोले गत्त है।' जिन्दगी भर राम को याद न किया, मुर्दा लाश के चारों तरफ हम दोहराते हैं : 'रामनाम सत्त है'। बड़ी देर हो गयी, जरा पहले दोहराना था !

मैं तो तुमसे कहूंगा, जिनसे तुम्हें प्रेम हो उनको पकड़ लो, बांध दो अर्थी में, ले चलो : रामनाम सत्त है ! जिन्दगी में कुछ कहो, तो सुनें तो कुछ अकल आए ! अब मर गये, अब न उन्हें सुनाई पड़ता है, अब तुम चिल्ला रहे हो : रामनाम सत्त है !

और ध्यान रखना, तुम मुर्दों के लिए तो रामनाम सत्त कह रहे हो और कह रहे हो : सत्त बोले गत्त है, कि सत्य बोलो तो गति हो जाती है, अपने बाबत क्या ख्याल है ? वह तुम दूसरों पर छोड़ रहे हो, कि भई, जैसे हमने तुम्हारी लाश पर बोला रामनाम सत्य है, जब हम मरें, तुम भी बोल देना। एक औपचारिकता निभा रहे हो !

मरघट पर लोग जाकर गपशप करते हैं बाजार की...कौन-सी फिल्म अच्छी लगी है गांव में ? न मालूम कहां-कहां की फिजूल बातें करते हैं।....जरा मरघट पर जाया करें ! जब अर्थी ले जाते हैं तो 'रामनाम सत्त है' ! अर्थी पहुंचा कर, अर्थी को रखा चिता पर, फिर अर्थी की तरफ पीठ करके जरा लोगों की बातें सुनो ! क्या-क्या गजब की बातें लोग कर रहे हैं !

मैंने तो अपने गांव में ऐसे लोग भी देखे हैं की उधर लाश जल रही है और वे जुआ खेल रहे हैं। मरघट पर ! मरघट पर जुआ खेलने की सुविधा है, पुलिस को भी पता नहीं चलता कि वहां जुआ चल रहा है। और फिर बैठे-बैठे करें भी क्या ? अब ये सज्जन तो जलने में भी वक्त लेंगे। तीन-चार घंटे लगें, कि छह घंटे लगें। और अगर लकड़ियां गीली हों और वर्षा का मौसम हो तो पता नहीं दिन भर खराब होने वाला है ! तो लोग ताश ले जाते हैं साथ कि वहीं बैठकर ताश जमा देंगे ! कैसी अद्‌भुत दुनिया है, कोई मर गया है तुम्हें अभी भी ताश खेलने की पड़ी है !

लेकिन मैं समझता हूं, इसके पीछे मनोवैज्ञानिक कारण हैं। ये बचने के उपाय हैं। इस तरह अपने मन को इस सत्य से बचाना है कि मौत है, कि मौत आती है। इसकी आयी, कल अपनी भी आती होगी। इसको झुठलाना है। और कोई मरते हैं; यह मरने का धंधा हमेशा दूसरे करते हैं, अपने को थोड़े ही मरना है ! मैं नहीं मरूंगा, ऐसा हम अपने भीतर भाव रखते हैं। कहें, चाहे न कहें।

अरे हां, पलटू रामनाम है सार संदेसा कहि गये।।
जो जनमा सो मुआ नाहीं थिर कोइ है।

जो जन्मा, वह मरेगा, कोई भी बचने वाला नहीं है। जन्म के साथ ही मृत्यु भी आ गयी।

राजा रंक फकीर गुजर दिन दोइ है।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर चाहे अमीर हो, चाहे गरीब, दो दिन की जिन्दगी है ! ऐसे गुजारो कि वैसे, सुविधा में कि असुविधा में, झोंपड़ों में कि महल में, कुछ बहुत फर्क नहीं पड़ता।

चलती चक्की बीच परा जो जाइकै।

यह जो जन्म-मृत्यु की चक्की है, इसके बीच में जो भी पड़ गया है...

अरे हां, पलटू साबित बचा न कोय गया अलगाइकै।

उसे काल का ग्रास हो ही जाना पड़ा है। मृत्यु अवश्यंभावी है, वह धार्मिक हुए बिना नहीं रह सकता। क्योंकि-मृत्यु से बचने का एक ही उपाय है, वह धर्म है। मृत्यु के सागर के पार ले जाने वाली एक ही नौका है, वह धर्म है। मृत्यु के पार आंखों को अमृत का दर्शन करा देने वाला अगर कोई भी द्वार है तो वह धर्म है।

पलटू की बात पर ध्यान करना। यहां खूब जिंदगी सुहानी है, प्यारी है, मगर रुक मत जाना !

देख सजन का रूप सुहाना करना मत बिसराम
बटोही करना मत बिसराम

तेरा काम है चलते रहना
धूल डगर की तेरा गहना
तूफानों में खोजते रहना नए-नए नित गाम
बटोही नए-नए नित गाम

गरमी हो चाहे सर्दी हो
फूलन रुत हो या जर्दी हो
प्रेम के कारण बैठके जलना नहीं है तेरा काम
बटोही नहीं है तेरा काम

सूरज तेरे पांव चूमे
धरती तेरे संग में घूमे
प्रेम लगन के गीत सुना और जाप हरी का नाम
बटोही जाप हरी का नाम

देख सजन का रूप सुहाना करना मत बिसराम
बटोही करना मत बिसराम

आज इतना ही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4.

गहन से भी गहन प्रेम है सत्संग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओशो,

बुद्ध कहते हैं : अप्प दीपो भव। अपने दीये स्वयं बनो और आपकी देशना है; रसमय होओ, रसमय होओ। क्या दोनों उपदेश मात्र अभिव्यक्ति के भेद हैं ?

ओशो,

मैं वर्षों से संतों की वाणी के अध्ययन-मनन में लीन रहा हूं, पर अभी तक कहीं पहुंचा नहीं और संत तो कहते हैं कि सत्संग क्षण में पहुंचा देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओशो,

कोई इंसान इंसान को भला क्या देता है
आदमी सिर्फ बहाना है, बस, खुदा देता है
वह जहन्नुम भी दे तो करूं शुक्र अदा
कोई अपना ही समझकर तो सजा देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहला प्रश्न : ओशो, बुद्ध कहते हैं : अप्प दीपो भव। अपने दीये स्वयं बनो। और आपकी देशना है : रसमय होओ, रासमय होओ। क्या दोनों उपदेश मात्र अभिव्यक्ति के भेद हैं ?

नरेन्द्र ! मात्र अभिव्यक्ति का भेद नहीं है। भेद और थोड़ा गहरा है। बुद्ध का वक्तव्य साध्य के संबंध में, मेरा वक्तव्य साधन के संबंध में। मैं बुद्ध से राजी हूं; अप्प दीपो भव, अपने दीये बनो। दीये बनने का और तो कोई मार्ग भी नहीं। कोई दूसरा तुम्हारे लिए दीया हो सकता भी नहीं। खुद की आंख ही होगी तो देख सकोगे। खुद के पैर ही होंगे तो चल सकोगे।

तुमने वह कहानी जरूर सुनी होगी। जिन्होंने गढ़ी है, शायद सोचा होगा गहरी बात कह रहे हैं। संसार के संबंध में तो शायद सच भी हो, लेकिन अध्यात्म के संबंध में बिलकुल झूठ है। तुमने सुना होगा, एक जंगल में आग लगी। उस जंगल में एक अंधा आदमी और एक लंगड़ा आदमी रहते थे। लंगड़ा देख सकता था, चल नहीं। अंधा चल सकता था, देख नहीं। बात सीधी-साफ थी। दोनों ने समझौता किया। दोनों ने सौदा किया। अंधे ने लंगड़े को कंधे पर उठा लिया। लंगड़ा देखता है, अंधा चलता है। दोनों के साथ-सहयोग से जंगल की आग से बचकर वे बाहर निकल आए।

यह बात संसार के संबंध में सही हो सकती है। यहां अंधों में लंगड़ों में बहुत सौदे होते हैं, बहुत साझेदारी होती है। यहां अंधे और लंगड़े ही हैं। और किसको खोजोगे ? दोस्ती उनसे, दुश्मनी उनसे ! लेकिन जीवन के परम सत्य तक जाने का ऐसा कोई उपाय नहीं है। तुम किसी और की आंख से नहीं देख सकते हो वहां। अपनी ही आंख चाहिए। वहां उधार नहीं चलेगा। धर्म नगद है। तुम्हारे पास अपनी संपदा होगी तो ही कुछ हो सकेगा। परमात्मा के सामने तुम वेद का उच्चार करोगे, गीता गुनगुनाओगे, कुरान की आयतें पढ़ोगे, तो दो कौड़ी के सिद्ध होओगे। परमात्मा के सामने तो तुम्हें अपना गीत गाना होगा। अपना वेद जन्माना होगा। अपनी कुरान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगानी होगी। वहां तो केवल तुम्हारी अन्तरात्मा से जो स्वर उठेंगे वे ही स्वीकृत हो सकते हैं। वहां किसी और के बजाए हुए गीत, किसी और के नाचे हुए नृत्य काम नहीं आएंगे। वहां तुम 'हिज़ मास्टर्स वाइस' के रिकार्ड की तरह मत जाना। वहां रिकार्डों का कोई मूल्य नहीं है। वहां तो तुम्हारी परख होगी। वे आंखें तो तुम्हारे अन्तस्तल में झांकेंगी। वे तो तुम्हारे अन्तरतम को परखेंगी। वहां तो तुम्हें नग्न खड़े होना होगा। मांगे गए उधार वस्त्र द्वार पर ही छुड़ा लिए जाएंगे। इसलिए बुद्ध ने कहा : अप्प दीपो भव। अपने दीये बनो।

बुद्धों के पास यह खतरा खड़ा होता है। बुद्धों को इस बात के लिए बार-बार चौंकाना पड़ता है, चेताना पड़ता है। क्योंकि तुम हो आलसी। तुम्हारी आदत है कि कुछ मुफ्त मिल जाए तो क्यों श्रम करो ! तुम्हारे जीवन-भर का हिसाब है : चोरी-चपाटी। सत्य भी तुम चुरा लेना चाहते हो। वह भी किसी की जेब काट लो, ऐसी तुम्हारी आकांक्षा है। सत्य तक पहुंच जाने के लिए भी कोई सुगम-सस्ता मार्ग मिल जाए; मुफ्त मिल जाए तो बहुत बेहतर; कुछ न चुकाना पड़े तो धन्यभाग; ऐसी तुम्हारी अभीप्सा है। लेकिन सत्य मुफ्त नहीं मिलता। सत्य को तो प्राणों से खरीदना होता है। सत्य कुर्बानी मांगता है। सत्य कहता है : अपने सिर को काटो और चढ़ाओ। अपने अहंकार को मिटाओ। इतनी कीमत न दे सको तो फिर झूठ में ही जीना होगा। रोशनी कहती है : तुम मिटो तो मैं होऊं। अंधेरा कहता है, तुम मजे से रहो; तुम्हारे रहने में ही मेरा रहना है। अहंकार और अंधेरे में सांठ-गांठ है। प्रकाश के आते जैसे अंधकार चला जाता है, ऐसे ही अंतरात्मा में प्रकाश के उदय होते ही आध्यात्मिक अंधकार टूट जाता है, छूट जाता है।

'अप्प दीपो भव' सभी बुद्धों को कहना पड़ता है; क्यों ? क्योंकि बुद्धों का जलता हुआ दीया देखकर तुम्हें लगता है, अब हमें क्या करना ? ओशो, आप तो जानते हैं, आप हमें जना दें ! आपको तो मिल गया, आप हमें सुझा दें ! आपने रास्ता पा लिया, अब हम क्यों रास्ते की तलाश करें ? हम तो अनुसरण करेंगे। हम तो आपके पीछे-पीछे चलेंगे। हम तो आपकी छाया बनेंगे। कहने वाले शायद सोचते होंगे, बड़ी श्रद्धा की बात कह रहे हैं ! कहने वाले शायद सोचते होंगे—और समर्पण क्या होगा ! लेकिन आदमी का मन बहुत बेईमान है। यह समर्पण नहीं है, न श्रद्धा है। यह तो श्रद्धा से बिलकुल विपरीत है। यह तो अहंकार का ही उपाय है, आयोजन है। अपने को बचाने की अंतिम तरकीब है, अंतिम व्यवस्था है। अब तुम बुद्ध के वस्त्र ओढ़ लो, तो बुद्ध हो जाओगे ! कि बुद्ध का कमंडल उठा लो तो बुद्ध हो जाओगे ? कि बुद्ध जैसे उठो, बैठो, तो बुद्ध हो जाओगे !

बुद्ध का चचेरा भाई था : देवदत्त। बचपन से बुद्ध के साथ खेला, बड़ा हुआ। लड़े भी होंगे, झगड़े भी होंगे, एक-दूसरे को कभी पटका भी होगा—सब कुछ हुआ होगा, दोनों बराबर उम्र के थे, साथ-साथ बढ़े... एक ही महल में बड़े हुए। फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्ध तो तथागत हो गये, परम ज्ञान को उपलब्ध हुए, देवदत्त के मन में बड़ी ईर्ष्या जगी। उसने कहा : जो बुद्ध कर सकते हैं, वह मैं भी कर सकता हूं। तो वह आकर बुद्ध से दीक्षित हुए। लेकिन दीक्षित होने में काइयांपन था; चालबाजी थी, दुकानदारी थी। वह दीक्षित हुआ कि जरा ठीक से देख लूं, आखिर बुद्ध की प्रतिष्ठा का राज क्या है ? क्या खाते हैं, क्या पीते हैं, क्या पहनते हैं; कब सोते, कब उठते; क्या-क्या करते हैं, ठीक से जांच कर लूं, साल-छह महीने में सब मेरी समझ में आ जाएगा; फिर मैं भी वही करूंगा। मैं भी बुद्ध हो जाऊंगा।

और साल-छह महीने में...देवदत्त बुद्धिमान आदमी था...उसने बुद्ध की ठीक से जांच-पड़ताल कर ली। ठीक से निरीक्षण कर लिया : ऐसे उठते, ऐसे बैठते, ऐसे चलते। वैसे ही उठने लगा, वैसे ही बोलने लगा, वैसे ही चलने लगा—बुद्ध की बिलकुल ही अनुकृति हो गया। और तब कुछ लोग उससे प्रभावित भी होने लगे। अंधों की दुनिया है ! इस अंधों की दुनिया में काने भी राजे हो जाते हैं। अंधों की दुनिया में काना ही राजा हो सकता है। आंखवालों को तो अंधे बर्दाश्त ही नहीं करते। अंधा समझौता कर लेता है काने से कि चलो, तुम आधे-आधे, आधे हम जैसे। कम-से-कम आधे तो हम जैसे !

देवदत्त का और सब व्यवहार तो अज्ञानी का था, मूर्च्छित का था, लेकिन उठता था, बैठता था, चलता था, बोलता था...बड़े सुभाषित बोलता था। वचन, परिमार्जित थे। भाषा, सुगठित थी, सुडौल थी। उद्धरण देता था परम शास्त्रों के। व्याख्या, अनूठी थी ! विश्लेषण, गहरा था। तर्क, प्रतिष्ठित, प्रतिभापूर्ण। अंधे साथ होने लगे ! देवदत्त को भी पांच सौ शिष्य मिल गये। और अब पांच सौ शिष्य मिल गये, तो देवदत्त का असली अहंकार प्रगट हुआ जो अब तक छिपा था। उसने घोषणा कर दी : मैं भी बुद्ध हूं।

बुद्ध को खबर मिली, बुद्ध बहुत हंसे। बुद्ध ने कहा, मेरे जैसा चलना, मेरे जैसा उठना, मेरे जैसा बोलना—ऐसे कोई बुद्ध होता है ! दो बुद्ध कभी एक-जैसे उठते हैं, एक-जैसे बैठते हैं, एक जैसे चलते हैं ! इस तरह तो पाखंड पैदा होता है।

और देवदत्त पागल है, ठीक, मगर ये पांच सौ लोग जो बुद्ध को छोड़कर देवदत्त के साथ हो लिए, इनके लिए क्या कहोगे ?

देवदत्त बुद्ध को छोड़कर अलग हो गया। उसने अपने अलग धर्म की घोषणा कर दी। मगर जल्दी ही वे लोग बिखर गए। और देवदत्त जब मरा तो पछताता हुआ मरा। बहुत पीड़ा में मरा। एक महा अवसर खो गया। मरते वक्त उसे समझ में आयी बात, कि मैं ऊपर-ऊपर का आचरण सीख लिया, अन्तस का दीया तो जला ही नहीं।

आचरण कितना ही तुम सुव्यवस्थित कर लो, इससे अन्तस का दीया नहीं जलेगा। आचरण को सुव्यवस्थित करना ऐसा ही है जैसे कोई दीये की तसवीर बना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ले...सुंदर तसवीर बना ले, प्यारे-प्यारे रंग भर दे, फिर उस तसवीर को ले जाकर अपने कमरे में टांग ले—अंधेरा उस तसवीर से प्रभावित नहीं होगा। अंधेरा उस तसवीर से डरेगा नहीं। तसवीरों से कहीं अंधेरा मिटा है ? तसवीर टंगी रहेगी और अंधेरा कुंडली मार कर बैठा रहेगा। असली दीया चाहिए। फिर चाहे असली दिया मिट्टी का हो और तसवीर सोने की हो। असली दीया चाहिए। फिर चाहे असली दीया दो कौड़ी का हो और तसवीर पर हीरे-जवाहरात जड़े हों। तो भी अंधेरा असली दीये को पहचानेगा। असली दीये को पहचानते ही बाहर हो जाएगा। बाहर हो जाना ही पड़ेगा। असली दीये के पास आने का उपाय नहीं है।

मनुष्यों ने बहुत से बुद्धों को जाना है। महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट, जरथुस्त्र, लाओत्सु, नानक, कबीर, पलटू, फरीद। सदियों में ये जलते हुए दीये हुए। मगर फिर हम इनसे चूक क्यों गये ? कहां भूल होती रही ? इतने दीये जले, अंधेरा कम क्यों नहीं होता ? अंधेरा इतना ज्यादा है कि शक होने लगता है कि दीये कभी जले भी कि नहीं ! बुद्ध कभी हुए भी कि नहीं ! कहीं महावीर और कृष्ण और क्राइस्ट सब कपोलकल्पनाएं तो नहीं हैं !

और जो लोग ऐसे संदेह करते हैं, उनके संदेह में सत्य का थोड़ा-सा अंश है। क्योंकि अंधेरा इतना ज्यादा है; हम कैसे मानें कि दीये जले और अंधेरा मिटा नहीं। पृथ्वी वैसी-की-वैसी गर्हित, वैसी की ही वैसी नर्क में डूबी है ! इतने उबारने वाले हुए, उबरे लोग क्यों नहीं ? कहां चूक होती है ? कहां मूल में भूल होती है ?

चूक यहां होती है कि जब भी कोई जाग्रत पुरुष होता है, कोई दीया जलता है, हम बाह्य आचरण का अनुकरण करने लगते हैं। हम उसी जैसे कपड़े पहन लेते हैं, उसी जैसे उठते-बैठते, वही जो भोजन करता है करने लगते हैं। वह जब सोता है, सोते, जब उठता, तब उठते। हम सोचते हैं, ऐसे बाहर से जब बुद्ध जैसे हो जाएंगे तो भीतर भी बुद्ध जैसे हो जाएंगे। नहीं, ऐसा नहीं है। जीवन का गणित ऐसा नहीं है। भीतर बुद्ध जैसे हो जाओ तो बाहर जरूर बुद्ध जैसे हो जाओगे। लेकिन बाहर बुद्ध जैसे हो जाओ, उससे भीतर के बुद्ध का कोई संबंध नहीं है। तुम्हारे केन्द्र को मानकर चलती है तुम्हारी परिधि, लेकिन तुम्हारी परिधि को मान कर तुम्हारा केन्द्र नहीं चलता है।

इस मौलिक भूल ने आदमी को खूब भटकाया है। और अब समय है कि हम जागें—बहुत देर हो गयी ! शायद बहुत समय भी नहीं बचा है जागने को। अगर यह नींद जारी रही तो यह आदमियत जल्दी ही समाप्त हो जाएगी। क्योंकि अंधों के हाथ में एटम बम, हाइड्रोजन बम हैं। मूर्च्छित लोगों के हाथ में बड़े खतरनाक अस्त्र-शस्त्र हैं।

निक्सन ने अपने संस्मरणों में कहा है कि जब आखिरी घड़ी आ गयी और मुझे ऐसा लगा कि अब मुझे राष्ट्रपति का पद छोड़ ही देना पड़ेगा, तो मैं यह बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छिपा नहीं सकता, मैं यह बात कह देना चाहता हूं कि एक क्षण को मेरे मन में भी यह विचार आया था कि क्यों न अपने साथ सारी दुनिया को नष्ट कर दूं ! निक्सन के हाथ में ताकत तो थी सारी दुनिया को नष्ट करने की। चाभी तो थी। चाहता तो तीसरा महायुद्ध छेड़ देता। सब भस्मीभूत हो जाता। निक्सन का धन्यवाद करना होगा। निक्सन का सम्मान करना होगा। निक्सन ने अपने पर काबू रखा। मेरे लिए तो हजार 'वाटरगेट' हुए होते तो भी दो कौड़ी के हैं और निक्सन मूल्यवान है। क्योंकि निक्सन ने बड़ा संयम रखा। ऐसी घड़ियों में संयम रखना मुश्किल हो जाता है। जब आदमी खुद डूब रहा हो, तो क्यों न सबको डुबा ले ! और निक्सन इस भांति मूढ़ों की दुनिया में कम-से-कम थोड़ी-सी समझ वाला आदमी साबित होता है। छोड़ दिया राष्ट्रपति का पद। हाथ में चाभी थी, घड़ी-भर में सारी दुनिया आग की लपटों से डूब जाती !

मूर्च्छित आदमी के हाथ में भयंकर अस्त्र-शस्त्र हैं। इसलिए अब ज्यादा देर भी नहीं है, या तो आदमी को जागना पड़ेगा या मिटना पड़ेगा। अब हमारे पास समय खोने को है भी नहीं। शायद यह अच्छा है। शायद समय के इस दबाव में, शायद महाविनाश की इस संभावना में एक वरदान छिपा है। शायद आदमी ऐसे ही जाग सकता है। दुर्दिन में ही जागरण होता है और इससे बड़े दुर्दिन कभी भी न थे।

लेकिन मौलिक भूल से अब सावधान रहना।

बुद्ध कहते हैं : अप्प दीपो भव। अपने दीये बनो, मेरा अनुसरण न करो, मेरी नकल न करो, मेरी कार्बन कापी न बनो। तुम खुद चैतन्य से भरपूर हो, अपने ही चैतन्य को झकझोरो, धूल को झाड़ो ! तुम्हारे भीतर दर्पण है, उसे ही पोंछो, निखारो, नहलाओ। तुम भी वही हो जो मैं हूं। मुझमें और तुममें जरा भी भेद नहीं। तुम क्यों मेरे पीछे चलोगे ?

यह साध्य है , यह लक्ष्य है कि प्रत्येक व्यक्ति अपना दीया बन जाए।

नरेन्द्र ! और जब मैं कहता हूं : रसमय होओ, रासमय होओ, तो मैं साधन सुझा रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं, कैसे अपने दीये बनोगे ? रोते-रोते कोई अपना दीया नहीं बना। जो भी अपना दीया बना है, वह एक अपूर्व नाच से भर गया है तब दीया बना है। मुस्कराहट, नाच, आनंदमग्नता, अस्तित्व के साथ एक रास–रस-विभोर हो जाओ तो अपने दीये बनोगे। जो रसविभोर है, लेकिन जिसने होश का कोई प्रयास नहीं किया है, उस दीये में तेल तो बहुत है लेकिन बाती नहीं है। और न तो अकेली बाती काम की है, न अकेला तेल काम का है।

फिर बाती भी हो, तेल भी हो और जिसने प्रयास नहीं किया, चकमक नहीं रगड़ी... 'चित चकमक लागै नहीं'...जिसने ज्योति नहीं जगाई सोई हुई, तो बाती भी पड़ी रहे, तेल भी पड़ा रहे !

तीन चीजें चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीया तो तुम हो ! तुम्हारी देह तुम्हारा दीया है !... तुमने एक मजे की बात देखी ? हमारी भाषा अनूठी भाषाओं में एक है। इसमें तेल का अर्थ तेल भी होता है और स्नेह भी होता है। स्नेह का अर्थ प्रेम भी होता है और तेल भी होता है। किसी ज्ञानी ने बात जोड़ दी, मालूम होता है। किसी जानने वाले ने इस शब्द में रहस्य भर दिया। स्नेह के दो अर्थ : तेल भी और प्रेम भी। शरीर तो तुम्हारे पास है, यह तो मिट्टी का दीया है। मिट्टी से बना, मिट्टी में गिर जायेगा और मिल जायेगा। प्यारा है ! क्योंकि बिना दीये के तेल सम्हालोगे कहां ? मिट्टी का है, मिट्टी का धन्यवाद करो, पृथ्वी का गुणगान करो ! पृथ्वी की स्तुति करो ! लेकिन अकेले दीये का क्या सार है ? अकेले दीये को लिए अंधेरे में चलते रहो, क्या होगा ?

एक अंधा फकीर विदा हो रहा था अपने गुरु से। रात अंधेरी थी। और उसने कहा कि रात अंधेरी है और जाने में मुझे डर लगता है, जंगल का रास्ता है। मैं अंधा आदमी, रात अंधेरी है ! गुरु ने कहा, घबड़ाओ न; मैं एक दीया जला देता हूं। यह दीया ले लो और चल पड़ो। गुरु ने दीया जला दिया, अंधे के हाथ में दे दिया और अंधा जब सीढ़ियां उतर रहा था तब गुरु ने दीया फूंक कर बुझा दिया। अंधे ने कहा, यह भी खूब मजाक हुई ! फिर जलाया ही क्यों था जब बुझाना था ? गुरु ने कहा, तुम्हें याद दिलाने को। मेरा जलाया हुआ दीया बाहर के अंधेरे में तो काम आ जायेगा, मगर बाहर के अंधेरे को तोड़ना-न-तोड़ना बराबर है ! भीतर के अंधेरे को तोड़ने में मेरा जलाया दीया काम नहीं आयेगा। और खतरे वहां हैं। बाहर क्या खतरा है ! खतरे तुम्हारे भीतर हैं—वासनाओं का, विचारों का जंगल तुम्हारे भीतर है। हिंसा के, क्रोध के, वैमनस्य के जानवर तुम्हारे भीतर हैं। खतरा उनसे है, मेरे भाई ! बाहर के जानवर क्या करेंगे ? ज्यादा-से-ज्यादा देह को छीन लेंगे। सो देह फिर मिल जाएगी। अनंत बार मिली है, अनंत बार मिलती रहेगी। और भीतर मेरा जलाया दीया काम नहीं आ सकता।

इस सद्गुरु का दीया का बुझाना और ऐसा कहना और उस अंधे फकीर की भीतर की आंखें खुल गयीं। वह हंसा, झुका, चरण छुए और उसने कहा, आपने भी खूब समय पर मुझे जगाया ! रात कट गयी, सुबह हो गयी। अब मैं निश्चिन्त जाता हूं। अब न मेरी मृत्यु है, अब न मेरा अन्त है, अब न कोई भय है, अब न कोई जंगल है।

एक शराबी एक रात लौटा। जब गया था शराबघर तो लालटेन लेकर गया था। इस डर से कि लौटते-लौटते देर हो जाएगी और अंधेरी रात है। जब लौटा तो अपनी लालटेन उठाई और चल पड़ा। डगमगाते पैर, रास्ते पर खड़ी भैंस से टकरा गया, ट्रक से टकरा गया, नाली में गिर पड़ा,...बड़ा हैरान ! बीच-बीच में कभी-कभी झोंका शराब का उतरे थोड़ा तो ख्याल आए कि मामला क्या है, लालटेन मेरे हाथ में है, तो मैं टकराता क्यों हूं ? तो रोशनी का हुआ क्या ? फिर रोशनी का सार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या है ? अपने घर क्यों नहीं पहुंच पाता हूं ? सुबह किसी ने उसे बेहोश वहां पड़ा देखा तो उठाकर घर पहुंचाया। दोपहर तक उसे होश आया।

शराबघर का मालिक दोपहर आया उसकी लालटेन लेकर और शराबी को कहा कि भाई, यह लालटेन तुम अपनी सम्हालो, रात तुम भूल से तोते का पिंजड़ा उठा कर चल दिये ! अब बेहोश आदमी को क्या पता—क्या तोते का पिंजड़ा है, क्या लालटेन ? तोते का पिंजड़ा उठाया होगा, समझ में आया कि चलो लालटेन उठा ली; चल पड़ा। और तोते के पिंजड़े से रोशनी नहीं मिलती।

जब तक तुम मूर्च्छित हो, तब तक तुम्हारे हाथों में तोतों के पिंजड़े हैं ! फिर तुम उन्हें चाहे वेद कहो, गीता कहो, धम्मपद कहो, कुरान कहो, जो तुम्हें कहना हो, मगर वे तोते के पिंजड़े हैं। तुम्हारी बेहोशी के कारण तुम्हारे हाथ में लालटेन हो ही नहीं सकती। लालटेन हो तो बेहोशी नहीं हो सकती। और फिर कोई तुम्हें दे भी दे...मैं तुम्हें दीया दे भी दूं और समझो कि उस गुरु जैसा बुझाऊं भी न, तो भी कितनी देर तुम उस दीये को सम्हाल सकोगे ?

और एक कहानी है।

एक झेन फकीर विदा हो रहा है। चलते वक्त उसने कहा कि रात अंधेरी है, क्या आप मुझे लालटेन न देंगे—अपने मित्र को कहा। मित्र ने लालटेन दे दी, वह चल पड़ा। कोई दस कदम ही गया होगा कि किसी से टकरा गया। अंधा है, उसे दिखाई नहीं पड़ता। उसने उस दूसरे आदमी से कहा कि मेरे भाई, क्या तुम भी अंधे हो ? यह मेरे हाथ की लालटेन तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती ? मैं तो अंधा हूं, मुझे दिखाई नहीं पड़ता कुछ—इसीलिए तो लालटेन लेकर चला कि कम-से-कम दूसरे को तो दिखाई पड़ेगी। कम-से-कम दूसरा तो मुझसे टकराने से बच जायेगा। तुम्हें क्या हुआ ? वह आदमी हंसने लगा। उसने कहा, मैं अंधा नहीं हूं, लेकिन तुम्हारी लालटेन बुझ गयी है !

अब अंधे आदमी को कैसे पता चले कि उसकी लालटेन बुझ गयी है ! तुम्हारे हाथ की गीता कब की बुझ गयी है, तुम्हें पता है ! तुम्हारे हाथ की कुरान कब की बुझ गयी है, तुम्हें पता है ! काश, तुम्हें इतना ही पता होता तो कुरान और गीता की जरूरत क्या होती ? तुम्हारे भीतर का दीया ही नहीं जल रहा है।

मिट्टी की देह है, यह दीया है। इसमें प्रेम का रस अगर भरा हो, तो तेल है। इसलिए मैं कहता हूं : रसमय होओ, रासमय होओ। नाचो, गाओ, उत्सव मनाओ ! क्योंकि ऐसे ही तुम्हारे पोर-पोर से रस झरेगा और तुम्हारा दीया तेल से भर जायेगा। और फिर तुमसे कहता हूं कि ध्यान में चकमक को रगड़ो। होश को जगाओ। जागकर देखो विचारों को, जागकर देखो वासनाओं को—छोड़ने की तो मैं कहता ही नहीं। जो तुमसे छोड़ने को कहे, समझना कि तुम जैसा ही अंधा है। अंधेरे को कोई छोड़ने को कहे, तो समझ लेना कि अंधा है। अंधेरा छोड़ा नहीं जाता, बस दीया जल जाए, अंधेरा छूट जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए मैं तुमसे त्याग करने को नहीं कहता; त्याग होना चाहिए। अपने से होना चाहिए। होगा ही। अनिवार्य है। अपरिहार्य है। एक बार तुम्हारे भीतर बोध जग जाए, त्याग तो होगा ही। बोध जग जाने पर कौन कंकड़-पत्थरों को पकड़े बैठा रहेगा ! बोध जग जाने पर कौन कचरे को इकट्ठा करेगा ! बोध जग जाने पर कौन पकड़ेगा संसार को ! रहेगा भी संसार में तो कमलवत। रहेगा पानी में और पानी छुएगा नहीं।

इसलिए मैं तुमसे त्याग करने को नहीं कहता, छोड़ने को नहीं कहता।

जो तुमसे कहते हैं, वे तुम जैसे अंधे हैं। और तुम्हें उनकी बात जंचती है, क्योंकि अंधों को अंधों की भाषा समझ में आती है। गूंगों को गूंगों की भाषा समझ में आती है। बहरे एक-दूसरे को इशारा कर लेते हैं। कठिनाई तो तब होती है जब आंख वाला तुम्हारे बीच होता है, क्योंकि वह कुछ और भाषा बोलता है। किसी और लोक की भाषा बोलता है। ऐसे तो तुम्हारी ही भाषा बोलता है, लेकिन उसके अर्थ इतने भिन्न होते हैं कि तुम चूक-चूक जाते हो। या तुम अपने अर्थ समझ लेते हो जो कि उसके अर्थ नहीं हैं। और तुम्हारे अर्थ अनर्थ कर देते हैं।

दीया मौजूद है, प्रेम तुम्हारे रोएं-रोएं में भरा है, लेकिन सदियों से धर्म तुम्हें प्रेम के विपरीत सिखा रहे हैं। प्रेम का शत्रु बना रहे हैं। सदियों से धर्मो ने जीवन का विरोध किया है, निषेध किया है। उन्होंने तुम्हारे प्रेम के स्रोत अवरुद्ध कर दिए हैं। उन्होंने तुम्हारे प्रेम की इतनी निन्दा की है कि तुम सूख गये हो। दीया रह गया, झरने बन्द हैं।

मैं चाहता हूं तुम्हारे झरने फिर खुलें।

इसलिए मैं तुमसे फिर प्रेम की बात कर रहा हूं। प्रेम के बिना तुम कहीं भी नहीं पहुंच सकोगे। प्रेम के बिना कोई भक्ति नहीं है और प्रेम के बिना कोई भगवान नहीं है। प्रेम ही प्रार्थना बनेगा और प्रार्थना ही अंतिम अवस्था में परमात्मा का अनुभव बनती है। इसीलिए प्रेम को पोर-पोर, रोएं-रोएं से बहने दो; भरने दो तुम्हारे हृदय के दीये को। प्रेम से भर जाओ। इसलिए कहता हूं : रसमय होओ, रासमय होओ। इसलिए निरंतर दोहराता हूं : 'रसो वै सः'। वह परमात्मा रसरूप है, तुम भी रसरूप होओ। इसलिए कहता हूं : जीवन से भागो मत, जीवन के अवसर का उपयोग कर लो।

नहीं कहता तुमसे : पत्नी को छोड़ो, बल्कि कहता हूं : इतना प्रेम करो कि पत्नी में परमात्मा दिखाई पड़ने लगे। नहीं कहता : पति को छोड़ो; इतना प्रेम करो कि पति में परमात्मा दिखाई पड़ने लगे। प्रेम जैसे गहरा होता है, वहीं परमात्मा की झलक आनी शुरू हो जाती है। है ही नहीं परमात्मा कुछ और सिवाय प्रेम की गहरी झलक के, प्रेम की गहरी लपट के। बच्चों को छोड़कर मत भागो ! उनकी आंखों में झांको ! वहां अभी परमात्मा ज्यादा ताजा है। अभी वहां धूल नहीं जमी। अभी बच्चे सूख नहीं गये हैं; अभी रसपूर्ण हैं। उनसे कुछ सीखो !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चों को सिखाओ ही मत...क्योंकि तुम सिखाओगे क्या ? सिखाओगे धन-पैसा जोड़ना, पद-प्रतिष्ठा के लिए लड़ना। सिखाओगे ईर्ष्या, वैमनस्य। सिखाओगे गणित, हिसाब, चालबाजियां। बच्चों को तुम सिखाओगे क्या ?

मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने बच्चे से कहा कि बेटा, यह सीढ़ी रखी है, इस पर चढ़ जा ! उसने कहा, क्यों पापा ? नसरुद्दीन ने कहा, कुछ पाठ पढ़ाना है, बेटा ! किस बात का पाठ, बेटे ने पूछा। नसरुद्दीन ने कहा, राजनीति का पाठ पढ़ाना है। मैं राजनीतिक हूं, चाहता हूं तू भी अपनी जिन्दगी में राजनीतिक बन। क्योंकि जो मजा राजनीति में है, वह मजा कहीं भी नहीं। दिल्ली पहुंचकर रहना—यह लक्ष्य ! कोई चीज विघ्न-बाधा न बने। एक पाठ तुझे देता हूं। यह दिल्ली पहुंचने में काम आयेगा।

बेटा सीढ़ियां चढ़ गया। कोई दस फीट ऊपर पहुंच गया तब नसरुद्दीन ने कहा, आ, छलांग लगा ले ! दोनों हाथ नसरुद्दीन ने फैलाए। बेटा थोड़ा डरा ! दस फीट ऊंचाई से कूदना, कहीं चूक जाए, इधर-उधर हो जाए, हाथ पैर टूट जाएं ! नसरुद्दीन ने कहा, अरे, डरता क्या ? मैं तेरा बाप तुझे सम्हालने के लिए तत्पर खड़ा हुआ हूं। कूद जा ! कूद जा, बेटा, श्रद्धा रख !

और जब बाप ने बहुत कहा तो बेटा कूद गया। और जैसे ही बेटा कूदा, नसरुद्दीन दो कदम हट कर खड़ा हो गया। धड़ाम से बेटा नीचे गिरा, घुटने छिल गये, रोने लगा; नसरुद्दीन ने कहा, चुप हो, पहले पाठ सीख ले ! उसके बेटे ने कहा, यह किस तरह का पाठ है ? आपने मुझे धोखा दिया। कहा सम्हालेंगे, सम्हाला नहीं। नसरुद्दीन ने कहा, यही पाठ दे रहा हूं, बेटा कि राजनीति में अपने बाप का भी भरोसा मत करना। इसको गांठ बांध ले। अगर दिल्ली पहुंचना है, तो ख्याल रखना, राजनीति में अपने बाप का भी भरोसा मत करना ! संदेह को सजग रखना।

तुम सिखाओगे क्या बच्चों को ? वही सिखाओगो जो तुम जानते हो। तुम जानते क्या हो ? तुम्हारे अनुभव की सार-संपदा क्या है ? कुछ भी तो नहीं ! एक रिक्तता हो तुम। एक अर्थहीनता हो तुम। विषाद से भरी हैं तुम्हारी आंखें। थोथेपन से भरा है तुम्हारा हृदय। न जीवन में कुछ महान जाना, न विराट पहचाना। क्षुद्र ही तुम्हारा जीवन रहा है। समुद्र के किनारे शंख-सीप बीनते रहे। डुबकी तो मारी नहीं समुद्र में भय के कारण। मोती तो तलाशे नहीं। अपने को भरमाये रखा किनारे पर ही, नाव कभी छोड़ी नहीं। क्योंकि तूफान के भय थे और दूसरे किनारे का कोई भरोसा न था। इसी कीचड़ में पड़े रहे; सिखाओगे क्या ? बच्चे से कुछ सीखो !

अच्छी दुनिया होगी तो हम बच्चे को सिखाएंगे कम, उससे सीखेंगे ज्यादा। और जो सिखाएंगे, वे उसे सजग करके सिखाएंगे कि ये दो कौड़ी की बातें हैं—कामचलाऊ हैं, उपयोगी हैं तेरी जिन्दगी में, रोटी-रोजी कमाने में सहयोगी होंगी, इनसे आजीविका मिल जाएगी, इनसे जीवन नहीं मिलता। और हम बच्चे से सीखेंगे जीवन। उसकी आंखों में झलकता हुआ प्रेम, आश्चर्यचकित विमुग्ध भाव। बच्चे की अवाक् हो जाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की क्षमता। छोटी-छोटी चीजों से ध्यानमग्न हो जाने की कला। एक तितली के पीछे ही दौड़ पड़ा तो सारा जगत भूल जाता है, ऐसा उसका चित्त एकाग्र हो जाता है। एक फूल को ही देखता है तो ठिठका रह जाता है। भरोसा नहीं आता। इतना सौन्दर्य भी इस जग़त में हो सकता है ! इसीलिए तो बच्चे पूछे जाते हैं, प्रश्नों पर प्रश्न पूछे जाते हैं; थका देंगे तुम्हें इतने प्रश्न पूछते हैं। उनके प्रश्नों का कोई अंत नहीं। क्योंकि उनकी जिज्ञासा का कोई अन्त नहीं। उनकी मुमुक्षा का कोई अन्त नहीं। जानने की कैसी अभीप्सा है ! अगर हममें समझ हो, तो हम बच्चों से उनकी सरलता सीखेंगे, उनका प्रेम सीखेंगे, उनका निर्दोषभाव सीखेंगे, उनकी आश्चर्यविमुग्ध होने की क्षमता और पात्रता सीखेंगे। तब शायद तुम्हारा हृदय भरने लगे एक नये रस से। तुम भी शायद नाच सको छोटे बच्चों के साथ। तुम भी शायद खेल सको छोटे बच्चों की भांति। तुम्हारे जीवन में भी एक लीला प्रगट हो। परमेश्वर लीलामय है, तुम भी थोड़े लीलामय हो जाओ तो उसकी भाषा समझ में आए, उससे सेतु बने, उससे थोड़ा संबंध जुड़े, उससे थोड़ी गांठ बंधे।

इसलिए कहता हूं, रसमय होओ। रसमय होओ अर्थात् प्रेममय होओ; प्रीतिमय होओ। इसलिए कहता हूं, रासमय होओ। चांद-तारे नाच रहे हैं, पशु-पक्षी नाच रहे हैं, पृथ्वी, ग्रह-उपग्रह नाच रहे हैं, सारा अस्तित्त्व नाच रहा है। एक तुम क्यों खड़े हो उदास ? क्यों अलग-थलग ? क्यों अपने को अजनबी बना रखा है ? क्यों तोड़ लिया है अपने को इस विराट अस्तित्व से ? किस अहंकार में अकड़े हो ? कैसी जड़ता ? झुको ! अर्पित होओ ! अस्तित्व से गलबहियां लो ! अस्तित्व को आलिंगन करो ! नाचो इसके साथ !

जब मेघ घिरें और मोर नाचने लगें, तब बैठ कर अखबार मत पढ़ते रहो ! और जब दूर जंगल में कोई चरवाहा अलगोजा बजाने लगे, तो तुम्हारे भीतर कुछ नहीं बजता ? कुछ बजता ही नहीं ! तुम जीवित हो या मर गये हो ! यह कैसा जीवन है ? जब कोई तार छेड़ देता है सितार के, तुम्हारी हृदयतंत्री में कुछ नहीं छिड़ता ? तुम वैसे ही खड़े रह जाते हो ? रूखे-सूखे; दूर-दूर।

थोड़े काव्यमय होओ, थोड़े संगीतमय होओ, थोड़े उत्सवमय होओ। इसे मैं धर्म कहता हूं। धर्म की मेरी परिभाषा है : उत्सव। धर्म की मेरी परिभाषा है : आनंद की क्षमता। मैं नहीं कहता कि धर्म की परिभाषा में ईश्वर की मान्यता जरूरी है। नहीं है, बिलकुल जरूरी नहीं है। ईश्वर तो धर्म का अंतिम अनुभव है; उसको हम प्राथमिक जरूरत कैसे बना सकते हैं ? वह तो निष्कर्ष है। और लोग ऐसे अजीब हैं कि निष्कर्ष को पहले ही कहते हैं मानो। कहते हैं, ईश्वर को मानकर चलो तो तुम धार्मिक हो। मैं कहता हूं : तुम धार्मिक हो। मैं कहता हूं : तुम धार्मिक होओ तो एक दिन ईश्वर प्रगट होगा और तुम्हें उसे मानना ही होगा। मैं कहता हूं, नास्तिक हो, चलेगा। चल पड़ो !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आस्तिक आएं, नास्तिक आएं; मानने वाले आएं, न मानने वाले आएं; मानने-न-मानने से कोई भेद नहीं पड़ता, अप्रासंगिक है यह बात। यह तो अंतिम निष्कर्ष में जब प्रगट होता है विराट, तो क्या करोगे ? उस वक्त अपनी आस्तिकता बचाओगे ? उस वक्त अपने क्षुद्र कोने-कांतर में छिपे हुए व्यर्थ के सिद्धांत बचाओगे ? जब आकाश तुम पर टूट पड़ेगा, तो अपने आंगन को कहां बचाओगे ? जब सागर तुम्हें खोजता चला आएगा, तो अपनी बूंद को बचाकर भागोगे कहां ! नहीं कोई भाग सकता है फिर।

लेकिन लोग कहते हैं : पहले ईश्वर को मानो !

धर्म की परिभाषा में मैं ईश्वर की कोई जगह ही नहीं मानता। ईश्वर हो या न हो, इससे कुछ लेना-देना नहीं है, रस हो ! रस हो तो ईश्वर एक दिन होकर रहेगा। रस की धारा एक दिन उसके सागर तक पहुंच ही जाती है। खूब रस हो।

इसलिए मैं एक जीवन-विधायक धर्म तुम्हें दे रहा हूं। यह जीवन-निषेधक धर्म नहीं है। इसमें उपवास पर जोर नहीं है, इसमें उत्सव पर जोर है। हां, अगर तुम्हें उपवास में भी आनंद आता हो, तो मुझे कोई एतराज नहीं। अगर उपवास भी तुम्हारा उत्सव बन सकता है, अगर उपवास तुम्हें नाच देता हो, तो मुझे स्वीकार है। समग्ररूपेण स्वीकार है। लेकिन उपवास अगर तुम्हें सताता हो और सताने को तुम धर्म समझते हो तो तुम बड़ी भूल में हो। परमात्मा पागल नहीं है और परमात्मा कोई दुष्ट नहीं है और परमात्मा कोई आततायी नहीं है कि तुम अपने को सताओगे तो वह प्रसन्न होगा। तुम्हारी प्रसन्नता में प्रसन्न होगा। तुम्हारे अहोभाव में आह्लादित होगा। यह अस्तित्व जब तुम रस से भरते हो तो खूब आह्लादित होता है।

अभी तो वैज्ञानिक इन निष्कर्षों पर पहुंचे हैं कि अगर कोई आनंदमग्न होकर वृक्षों के पास बांसुरी बजाए या सितार छेड़ दे, तो वृक्ष में ज्यादा फूल आ जाते हैं। ज्यादा फूल ! फल जल्दी लग जाते हैं—समय के पहले और जल्दी पक जाते हैं और ज्यादा सुस्वादु होते हैं। अब यह वैज्ञानिक शोध है। यह मैं कोई कविता की और कवियों की बात नहीं कर रहा हूं। अब तो वैज्ञानिक समर्थन बड़े प्रमाण में मिल रहा है। जब तुम गाय को दुह रहे हो, अगर उसके आसपास मधुर संगीत बजाया जाए, गाय ज्यादा दूध दे देती है। दुनिया के अलग-अलग कोनों में प्रयोग किये जा रहे हैं।

एक साथ बीज बोए गये। आधे खेत को संगीत सुनाया गया, आधे खेत को संगीत नहीं सुनाया गया। दोनों को बराबर खाद दी गयी, बराबर पानी, बराबर धूप, सब तरह से सब बराबर। सिर्फ एक भेद—आधे को संगीत सुनाया गया, आधे को संगीत नहीं। जिस हिस्से को संगीत सुनाया गया, उसके पौधे दुगुने बड़े हुए और उसके फल दुगुने बड़े हुए। और जल्दी पौधे बढ़े और जल्दी फल आए। ज्यादा फल आये। और ज्यादा रसपूर्ण थे। पौधे भी संगीत की भाषा समझते हैं। तो परमात्मा न समझेगा ! पत्थर समझते हैं। तो परमात्मा न समझेगा !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम अगर रसमय हो तो परमात्मा तुम्हारी तरफ बहने लगता है। तुम में असमय फूल आने शुरू हो जाएंगे, तुम्हारे जीवन में नये-नये पत्ते उग आएंगे, खूब हरियाली हो जाएगी। फल लगेंगे, फूल लगेंगे। एक तृप्ति तुम्हें घेर लेगी। एक परितोष तुम्हारे चारों तरफ छा जाएगा। तुम पहली दफा जानोगे संतोष का अर्थ। सुना तो तुमने बहुत है, मगर वह सब बकवास है जो तुमने सुना है। जिसको तुम संतोष कहते हो, वह संतोष नहीं है; वह तो मन को समझा लेना है। वह तो वैसे ही है जैसे लोमड़ी नहीं पहुंच सकी अंगूरों तक तो कहती हुई चली गई कि अंगूर खट्टे हैं। तुम्हारा संतोष बस ऐसा ही है जैसे, अंगूर खट्टे हैं ! यह कोई संतोष नहीं है।

चाहते तो तुम भी हो कि धन बहुत होता, मगर नहीं है। चेष्टा भी की थी, मगर नहीं पा सके। अकेले ही थोड़े धन पाने चले हो, और करोड़ों लोग लगे हैं इस धन की दौड़ में। यहां कोई सामान्य झंझट नहीं है। बड़ी स्पर्धा है। गलाघोंट प्रतियोगिता है। तुम हार गए, धक्के दे निकाल दिये गये, चारोंखाने चित्त कर दिये गये। चारों खाने चित्त पड़े हो और कह रहे हो : संतोष है ! हमें चाहिए ही नहीं। हमें कुछ नहीं चाहिए। हम तो अपनी धूल में बड़े मस्त हैं। हमें सिंहासन चाहिए ही नहीं। यह सिर्फ अपने को सांत्वना देना है, यह संतोष नहीं है।

तुम मुर्दा हो, तुम्हारे साथ बड़े-बड़े सिद्धांत तक मुर्दा हो गये। तुम्हारे हाथ में सोना पड़ जाए तो मिट्टी हो जाता है। तुम भी गजब के जादूगर हो ! संतोष तो तब है जब तुम्हारे भीतर फूल लगें, फल लगें; तुम्हारा जीवन अभिव्यक्त हो, अपनी समग्र संभावनाओं को प्रगट करने में समर्थ हो। तुम जो गीत गाने आए थे, गा सको; तुम जो नृत्य नाचने आए थे, नाच सको। तब एक संतोष उपजता है। लाना नहीं पड़ता, थोपना नहीं पड़ता, आरोपण नहीं करना होता। उठता है तुम्हारे भीतर। जागता है तुम्हारे भीतर। घेर लेता है तुम्हें। बह उठता है तुम्हारे चारों तरफ। तुम उसमें डूब जाते हो। उस संतोष को पाने के लिए जीवन को रसमय बनाना होगा, रासमय बनाना होगा। छोड़ो न कोई भी अवसर नृत्य का, गीत का, रस का, आनंद का। इसलिए कहता हूं : रसमय होओ, रासमय होओ। यह दूसरा कदम हुआ। तुम्हारे भीतर प्रीति भर जाए, तो तुम तेल से भर गये।

फिर तीसरा उपाय, ध्यान। तीसरा चरण देह तो मिली प्रकृति से। प्रेम को तुम्हें सीखना होगा कला की तरह। और फिर ध्यान का विज्ञान है। कैसे चकमक को रगड़ो ? कैसे चकमक की रगड़ से ज्योति पैदा हो जाए, दीया जल उठे ?

साक्षी उसकी प्रक्रिया है। विचार को देखो, वासना को देखो, कामना को देखो— लड़ो मत, सिर्फ देखो ! शांत भाव से बैठकर देखते रहो। देखते-देखते—सिर्फ देखते-देखते, सिर्फ साक्षी बनते-बनते—ऐसी अग्नि प्रज्ज्वलित होती है कि भभक उठता है दीया।

बुद्ध ने कहा साध्य, मैं तुमसे कह रहा हूं साधन। और बिना साधन के साध्य की बात का कोई अर्थ नहीं है। दोहराते रहो : 'अप्प दीपो भव', अपने दीये खुद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनो, दोहराते रहो; लिख लो छाती पर : अपने दीये खुद बनो, एक दीया भी बना लो, छपवा लो, गुदवा लो, मगर उस दीये से रोशनी नहीं होगी। 'अप्प दीपो भव' दोहराते रहो, दोहराने से कुछ हल नहीं होने वाला है।

कल की बातें भूल भी जाओ आज का जश्न मनाओ
कल की बातें दुख का कारण, कल की बातें जहर का प्याला
कल की बातों के चक्कर ने अनहोनी के फेर में डाला
अनहोनी के फेर से निकलो गये समय पर मत पछताओ
कल की बातें भूल भी जाओ आज का जश्न मनाओ

कल जो रात था सपना देखा उसे न समझो जीवन मीत
आज के सुन्दर सपनों से तुम करियो निसदिन प्रीत
कल के झूठे सपनों में मत खोकर उम्र गंवाओ
कल की बातें भूल भी जाओ आज का जश्न मनाओ

आज की माया आज की बातें जीवन बगिया की सौग़ात
आज के दुखड़े आज रहेंगे कल को खा जाएंगे मात
आज अटल है आज के काम को आज ही तुम निबटाओ
कल की बातें भूल भी जाओ आज का जश्न मनाओ

चित्त, मन कल में जीता है। बीत गया कल, उसमें और आने वाला कल, उसमें। ये दो तुम्हारे भीतर साक्षी को जगने नहीं देते, ये दो कल, इन दो कलों के पाट में तुम पिसते हो। न तो पीछे के कल को बहुत मूल्य दो न आने वाले कल को बहुत मूल्य दो, यह वर्तमान का क्षण अभी और यहीं, झकझोर कर अपने को जगा लो।

एक सूफी फकीर अपने शिष्यों को कहा करता था : चटकाओ हाथ, मारो चांटा चेहरे पर और जागो अभी ! जैसे सोते से उठता हुआ आदमी अंगड़ाई लेता है, अंगुलियां चटकाता...वह फकीर ठीक कहता था : चटकाओ हाथ, लो अंगड़ाई, न चले इतने से काम तो मारो एक चांटा भी अपने चेहरे पर, झकझोरो और जागो ! तो फिर न कहोगे कि 'चित्त चकमक लागै नहीं'। लग ही जाएगी; फिर कैसे कहोगे ? फिर चकमक रगड़ खा गयी !

जो दो चक्कियां तुम्हें पीसती थीं, वे ही दो चक्कियां चकमक बन जाती हैं। तुम्हारी साक्षी बनते ही यह क्रांति घटती है। जिन चक्कियों में लोग पिस रहे हैं, उन्हीं चक्कियों को रगड़ कर लोग बुद्ध हो गए हैं। चक्कियां तो वही हैं, अवसर तो वही है, जीवन वही है, सिर्फ उनके उपयोग करने के ढंग अलग-अलग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाओ नया सवेरा लाओ
अंधियारे में कब तक बैठे मन बहलाओगे
कब तक सूखे पत्तों से ये महल सजाओगे
पतझड़ आखिर बीतेगी सावन रुत आयेगी
जीवन की शाखों पर कोयल झूम के गायेगी
तुम भी अपने सोग मिटाओ
चुप के सब बंधन बिसराओ
गाओ गीत मिलन के गाओ
जाओ नया सवेरा लाओ
पतझड़ की रूखी रुत ने बेदर्द किया है तुमको
सूखे पत्ते के संग इसने ज़र्द किया है तुमको
ये ज़र्दी मिट जायेगी जब फूल खिलेंगे हर सू
फुलवारी में नाचेगी फिर मस्त मनोहर खुश्बू
छोड़ो भी वो रात की बातें
भूल भी जाओ जलती रातें
प्रेम अमर की जोत जगाओ
जाओ नया सवेरा लाओ

आत्मा को दीया तो बनाना है लेकिन प्रेम का दीया बनाना है।

प्रेम अमर की जोत जगाओ
जाओ नया सवेरा लाओ

और जाना कहां है ? तुम प्रेम की ज्योति जगाओ, सवेरा अपने-आप चला आता है, तुम्हें तलाशता चला आता है।

नरेन्द्र, बुद्ध साध्य की बात कर रहे हैं, मैं साधन की। दोनों में एक ही सत्य की अभिव्यक्ति है। लेकिन भिन्न-भिन्न आयामों से और बिना साधन के साध्य का कोई अर्थ नहीं है। साधन है तो साध्य तक तो पहुंच जाओगे। मार्ग है तो मंजिल तक पहुंच जाओगे। मंजिल की बात चलती रहे और मार्ग का कुछ पता न हो, तो बस बात-ही-बात हाथ में रह जाएगी, पहुंचोगे नहीं। इसलिए मंजिल को भूल भी जाओ तो चलेगा, मार्ग को मत भूलना। साध्य विस्मृत करो, क्षमा हो सकता है। साधन को विस्मृत मत करना !

इसलिए धर्म की मौलिक आधारशिला साधन है। इसलिए तो धर्म को साधना कहते हैं। साधना यानी साधन। यदि साधन सम्यकरूपेण हमारे हाथ में है, तो साध्य तो फलेगा—फलेगा ही ! उसके फलने-न-फलने की तुम्हें चिंता करने की जरूरत ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। अगर तुमने खाद ठीक दिया और पानी समय पर दिया और धूप पहुंचने दी और बीज ऋतु आने पर बोए, तो ठीक समय पर अंकुर निकल ही आएंगे। फिर बागुड़ लगा देना, ताकि कोई कोमल अंकुरों को नष्ट न कर दे। और बागुड़ भी थोड़े दिन के लिए। जैसे ही वृक्ष बड़े हो जाएंगे, अपनी रक्षा करने में खुद समर्थ हो जाएंगे, फिर बागुड़ भी हटा लेना। साधन सम्यक् हो, नये-नये अंकुर जब जीवन में तुम्हारे चेतना के उठें, तो सुरक्षा करना।

संन्यास दोनों ही काम करने में समर्थ है। संन्यास तुम्हें साधन देता है कि क्या करो और संन्यास तुम्हें उपाय देता कि कैसे जब नये अंकुर आएं तो उन्हें बचाओ। फिर एक घड़ी आती है जब न बचाने की कोई जरूरत रह जाती है, न खाद-पानी की कोई चिंता लेनी पड़ती है, वृक्ष बड़ा हो गया, उसकी जड़ें दूर पाताल तक पहुंच गयीं, उसकी शाखाएं चांद-तारों से बात करने लगीं, अब वह अपने ही बल पर काफी है। अब तुम्हें उसकी कोई चिंता नहीं लेनी पड़ती। अब तुम निश्चिन्त बैठ सकते हो। इस अवस्था का नाम ही बुद्धत्व है। जब साधन की कोई जरूरत न रही और तुम सिद्धावस्था को उपलब्ध हो गये।

बनना है, अपने दीये जरूर बनना है। लेकिन कैसे बनोगे ? प्रीति का जितना संग्रह कर सको, उतना शुभ ! और ध्यान की चकमक को जितना रगड़ सको, उतना कल्याणकारी !

दूसरा प्रश्न : ओशो, मैं वर्षों से संतों की वाणी के अध्ययन-मनन में लीन रहा हूं, पर अभी तक कहीं पहुंचा नहीं। और संत तो कहते हैं कि सत्संग क्षण में पहुंचा देता है।

हरिदेव, सत्संग क्षण में पहुंचा देता है, संत ठीक कहते हैं। मगर अध्ययन-मनन सत्संग है, यह किस संत ने तुमसे कहा है ? अध्ययन-मनन तो सत्संग से बचने का उपाय है। अध्ययन-मनन का अर्थ है, किताब से ही काम चला लेंगे, जीवित गुरु के पास क्यों जाएं ?

किताब के पास एक सुविधा है, जब दिल हो खोलो, जब दिल हो बंद कर दो। कभी गुस्सा आ जाए, फेंक दो। कभी पूजा आ जाए, फूल चढ़ा दो। कभी मन हो तो महीनों न खोलो—धूल जमने दो। कभी मन हो जाए तो रोज-रोज खोल कर बैठो। किताब तुम्हारे हाथ में है, तुम किताब के हाथ में नहीं। तुम जो चाहो किताब के साथ कर सकते हो, किताब तुम्हारे साथ क्या कर सकती है ?

फिर जैसे अर्थ तुम्हें लगाने हों किताब के वैसे अर्थ लगाओ। कौन रोक सकता है ? किताब यह तो नहीं कह सकती कि ठहरो भाई, यह मेरा अर्थ नहीं। किताब तो कुछ बोल नहीं सकती। किताब है क्या ? कागज पर खींची गयी स्याही की लकीरें। अर्थ कौन देगा ? अर्थ तो तुम दोगे न !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझो।

तुम्हारी गीता रखी है और एक चींटा गीता पर चल रहा है। उसको तो कुछ गीता का पता नहीं चलेगा कि कृष्ण अर्जुन से क्या कह रहे हैं ! वहीं-वहीं चल रहा है। और तुम उसे फेंक दो, वहां से हटा दो, तो चींटे बड़े जिद्दी होते हैं, हठयोगी होते हैं, जहां से भगाओ वहीं लौट कर वापस आते हैं, तो तुम यह मत समझना कि इसका बड़ा लगाव, बड़ी आसक्ति है गीता से। कि देखो मैं फेंक देता हूं, यह वापस वहीं लौट आता है। ...वहीं 'भगवान् उवाच' के आसपास चक्कर मारता है। मगर चींटे को कुछ पता नहीं कि यहां क्या है। उसे तो यह भी पता नहीं कि यह किताब है। मगर चींटे पर मत हंसो। अगर तुम अरबी नहीं जानते तो कुरान तुम्हारे लिए क्या है ? और अगर तुम संस्कृत नहीं जानते तो उपनिषद् तुम्हारे लिए क्या है ? कुछ अर्थ उनमें नहीं रह गया। अर्थ तो हम डालते हैं।

फिर तुम जब पढ़ते हो कोई किताब, तो क्या पढ़ते हो ? क्या तुम वही पढ़ सकते हो जो कहा गया है ? असंभव ! गीता कही गयी पांच हजार साल पहले। पांच हजार साल में सब कुछ बदल गया। सब कुछ बदल गया ! कुछ भी वही नहीं है। पांच हजार साल पहले जिनको गीता कही गयी थी, वे लोग और थे, उनके सोचने-समझने के, जानने-मानने के ढंग और थे, उनके जीवन की शैली और थी। तुम्हारी जीवन-शैली से उस जीवन-शैली का कोई नाता नहीं है।

क्या तुम सोचते हो, आज तुम्हें कृष्ण मिल जाएं तो फिर वही गीता कहेंगे कि हे अर्जुन ! तूने गांडीव क्यों छोड़ दिया ? पहले तो वह भी चौकेंगे कि गांडीव है कहां, छोड़ेंगे कहां से ! थोड़ा चौंकेंगे कृष्ण भी कि रथ कहां है ? हाथी-घोड़े कहां हैं ? कौरव-पांडव कहां हैं ? और अर्जुन, कान में कलम लगाए स्टेशन पर टिकटें बांट रहे हैं ! कि किसी दफ्तर में फाइलों में आंखें गड़ाए बार-बार नाक पर चश्मा सरका रहे हैं ! ऐसे अर्जुन को देखकर कृष्ण भी थोड़े हैरान होंगे कि हे अर्जुन ! तुझे क्या हो गया ? नाक पर चश्मा ! अरे, क्षत्रिय होकर ! 'स्वधर्म निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' ! यह तू क्या कर रहा है ? परधर्म ? नाक पर चश्मा सरका रहा है ? कान में कलम लगाए बैठा है ? तेरे स्वधर्म का क्या हुआ ? और अर्जुन भी कहेंगे, महाराज, होश में आओ ! कहां की बातें कर रहे हो ! किन दिनों की बातें कर रहे हो !

पांच हजार साल में भाषा के अर्थ बदल गये। शब्द भी बड़ी यात्रा करते हैं। सम्मानित शब्द अपमानित हो जाते हैं, अपमानित शब्द सम्मानित हो जाते हैं। घूरों के भी दिन फिरते हैं ! शब्दों में नये-नये अर्थ लगते जाते हैं जैसे समय बढ़ता है। पुराने अर्थ धीरे-धीरे खो जाते हैं। शब्दों का कोई अपना अर्थ तो होता नहीं, समय के अनुकूल शब्दों को अर्थ लेने पड़ते हैं।

तुम क्या अर्थ लगाओगे गीता जब तुम पढ़ोगे ? हरिदेव, अध्ययन-मनन में क्या करोगे ? तुम अपने अर्थ बिठाओगे, जो वहां नहीं हैं। और तुम दूसरे अर्थ बिठा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी नहीं सकते, क्योंकि वे दूसरे अर्थ तुम में नहीं हैं। कृष्ण को समझना हो तो कृष्ण जैसी चेतना चाहिए। उससे कम में काम नहीं चलेगा। बुद्ध को समझना हो तो बुद्ध जैसी चेतना चाहिए। उससे कम में काम नहीं चलेगा। बुद्ध के वचनों में बुद्ध नहीं हैं, बुद्ध के चैतन्य में बुद्ध हैं। उस चैतन्य से शब्द निकले, तो उनमें बुद्ध की ध्वनि है। लेकिन तुम तक जब पहुंचेंगे तो उनकी बुद्ध-ध्वनि तो खो जाएगी, तुम्हारी ध्वनि समाविष्ट हो जाएगी। बुद्ध ने जो कहा था, वह तुम नहीं सुनोगे। तुम जो सुन सकते हो, वही सुनोगे। तुम जो अर्थ पकड़ सकते हो, वही पकड़ोगे।

अध्ययन-मनन से सत्य तक नहीं पहुंचा जाता। हां, पंडित हो सकते हो। प्रज्ञावान् नहीं। बौद्धिकता आ जाएगी, बुद्धत्व नहीं। खूब जानकारी बढ़ जाएगी, मगर ज्ञान की तो बूंद भी न आएगी। किताबें तो ऐसी हैं जैसे सूखे हुए फूल। न अब उनमें गंध है, न उनमें रस है। सूखे फूल शायद आदमियों को धोखा दे दें, लेकिन सूखे फूल रख दो तो मधुमक्खियां उनके ऊपर भिन-भिन करके नाचेंगी नहीं। भंवरे आकर गीत न गाएंगे। तुम भंवरों को धोखा नहीं दे सकते।

सम्राट सोलोमन के जीवन में यह कहानी है। सोलोमन दुनिया के थोड़े-से ज्ञानियों में एक ज्ञानी हुआ। जनक जैसा आदमी रहा होगा। सिंहासन पर बैठे-बैठे परम बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ। उसकी बड़ी ख्याति फैल गयी थी—आज भी मिटी नहीं है। और ऐसा ही नहीं है कि...सोलोमन तो यहूदी था...यहूदियों में ही उसकी ख्याति रही हो, उसकी ख्याति दूर-दिगंत तक फैल गयी है। दुनिया के कोने-कोने में हर जाति में इस तरह की कहावतें हैं—भारत में भी। लोग, अगर कोई बहुत बुद्धिमानी बताता हो तो उससे कहते हैं : बड़े सुलेमान बने हैं ! वह 'सुलेमान' जो कह रहा है, वह 'सोलोमन' की तरफ इशारा कर रहा है। उसे पता भी न हो कि उसकी भाषा में आते-आते सोलोमन सुलेमान हो गये। मगर वह भी कहता है कि बड़े सुलेमान के बच्चे ! न मालूम क्या समझ रखा है अपने को ?

सोलोमन की बड़ी ख्याति थी, उसकी बुद्धिमत्ता की। इथोपिया की रानी उसकी परीक्षा लेने गयी। उसने अपने दोनों हाथों में फूल ले रखे थे। उसने बड़े-बड़े कलाकार बुलाकर नकली फूल बनवाए थे—नकली गुलाब के फूल। एक हाथ में नकली फूल, एक हाथ में असली फूल, वह सोलोमन के दरबार में उपस्थित हुई और उसने सोलोमन से कहा कि हे सम्राट, मैंने तुम्हारी बुद्धिमत्ता की बहुत खबरें सुनी हैं, क्या तुम बता सकते हो मेरे किस हाथ में असली फूल है और किस हाथ में नकली ? सोलोमन ने एक क्षण गौर से देखा और समझ गया कि झंझट की बात है। दोनों फूल एक जैसे मालूम होते थे। सच तो यह था कि नकली असली से भी अच्छा मालूम हो रहा था। खूब सजाया गया था। सोलोमन ने कहा : मैं जरा बूढ़ा हो गया, मेरी आंखें भी कमजोर हो गयीं, जरा द्वार-दरवाजे खोल दो, ताकि रोशनी आये, मैं ठीक से देख सकूं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वार-दरवाजे खोल दिये गये और वह गौर से देखता रहा और फिर उसने कहा : तेरे बाएं हाथ में असली फूल है। सारा दरबार हैरान हुआ ! इथोपिया की रानी भी बहुत हैरान हुई ! उसने कहा, कैसे पहचाना ? सोलोमन ने कहा, छिपाना क्या ? खिड़कियां मैंने इसलिए नहीं खुलवाईं की रोशनी चाहिए, रोशनी तो काफी थी, खिड़कियां मैंने इसलिए खुलवाईं कि बगीचे से कोई मधुमक्खी भीतर आ जाए। क्योंकि जो मैं नहीं परख सकता, वह मधुमक्खी परख सकती है। और एक मधुमक्खी भीतर आ गयी। और जिस फूल पर बैठी, वह असली है। जिस फूल पर नहीं बैठी, वह नकली है। तुमने ध्यान नहीं दिया। गौर करो, असली फूल के बीच में आकर एक मधुमक्खी बैठी है। एक मधुमक्खी बैठी पायी गयी।

मधुमक्खी को तो धोखा नहीं दे सकते तुम झूठे फूल से, मगर आदमी को धोखा दिया जा सकता है। आदमी खुद इतना झूठा हो गया है कि सब तरफ के झूठ उसको जकड़ लेते हैं।

हरिदेव, तुम संतों की वाणी का अध्ययन-मनन करते रहे। क्या अध्ययन-मनन करोगे ! तोतारटन्त की तरह सीख लिए होंगे। कबीर के वचन दोहराने लगोगे, रहीम के वचन दोहराने लगोगे ? तुम्हें पक्का भी कहां है कि कबीर पहुंचे ! पक्का होगा भी कैसे ? बिना पहुंचे किसी को कभी पक्का नहीं हो सकता।

कल ही किसी मित्र ने पूछा था कि ओशो, आप भी खूब हैं ! पहले भी बुद्ध-पुरुष हुए हैं, लेकिन किसी ने किसी के कंधे पर बंदूक रख कर नहीं चलाई। आप दूसरों के कंधों पर रख कर बंदूक चलाते हैं। जैसे कि आप पलटू के कंधे पर बंदूक रख कर चला रहे हैं। तुम जाने कैसे कि पलटू बुद्धत्व को उपलब्ध हो गये हैं ? मैं अगर पलटू के कंधे पर रख कर बंदूक न चलाऊं तो शायद पलटू की तुम्हें कभी याद भी न आती। पलटू कहीं रास्ते में मिल जाते तो तुम शायद जय रामजी भी न करते। तुम सोचते हो कि पलटू बुद्ध हैं इसलिए मैं उनके कंधे पर रख कर बंदूक चला रहा हूं, हालत उल्टी है। मैं बंदूक उनके कंधे पर रख कर चला रहा हूं, इसलिए वे तुम्हें बुद्ध मालूम हो रहे हैं। मैं जानता हूं कि वे बुद्ध हैं।

और कौन बंदूक का बोझ अपने कंधे पर ढोए। जब इतने बुद्ध मिल रहे हों, उपलब्ध हों, और राजी हों, और अपनी राजी से कहते हों आ-आ कर कि महराज, मेरा कंधा कब चुनिएगा ?...पलटू कई दिन से पीछे पड़े थे। कि कबीर पर बोले, दादू पर बोले, फरीद पर बोले, नानक पर बोले, मुझ गरीब को क्यों छोड़ रहे हो ?

पलटू के कंधे पर बंदूक रख कर इसलिए चला रहा हूं कि होंगे कुछ तुम में जो पलटू के पास से गुजरे होंगे और चूक गये होंगे। लेकिन कुछ अनुस्मृति तो रह गयी होगी कहीं डोलती ! किसी अन्तस्तल में कुछ गंध तो छूटी रह गयी होगी। उस याद को पुनरुज्जीवित कर दूं तो शायद उसी बहाने तुम मेरे करीब आ जाओगे। नानक पर बोलता हूं; बुद्ध पर, महावीर पर, कृष्ण पर, क्राइस्ट पर, लाओत्सू पर;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर्फ इस कारण कि तुम अनंत यात्री हो और तुम न-मालूम कब किसके सत्संग में रहे होओ, तो कुछ-न-कुछ गूंज जरूर रह गयी होगी—जन्मों-जन्मों के बाद भी—उसे फिर पुकार दे रहा हूं।

आसान हो जाएगी बात। शायद तुम मुझे एकदम से समझ भी न पाओ। पलटू के बहाने समझ लो। शायद तुम सीधा-सीधा मुझे समझ न पाओ, लेकिन महावीर के बहाने समझ लो। मेरे लिए तो ये सब बहाने हैं। मैं सीधा ही कह सकता हूं, मुझे जो कहना है वही कह रहा हूं।...कोई पलटू की मैं फिक्र करता हूं ! जहां मुझे लगता है वहां उनको पलटा दे देता हूं। वे लाख चिल्लाएं, शोरगुल मचाएं, मैं कहता हूं : पलटू ही हो, चुप रहो ! अगर मैंने थोड़ा पलट दिया तो ऐसा क्या... ! समय बदल गया, लोग बदल गये, मुझे बहुत-से पलटे देने ही होंगे।

तुम पढ़ोगे क्या ? लेकिन चूंकि अध्ययन-मनन की तुम्हारी बड़ी आकांक्षा रहती है, इसलिए बुद्धपुरुषों पर बोल रहा हूं, ताकि तुम्हारे अध्ययन-मनन की खुजलाहट भी कम हो जाए। यह खुजलाहट भी पूरी हो जाए। फिर तुम्हें असली काम में लगा दूं, वह है सत्संग। सत्संग का अर्थ शास्त्र नहीं होता, सत्संग का अर्थ होता है : जीवित सत्य के साथ जुड़ जाना; सत्य का संग। शब्द का नहीं, सिद्धांत का नहीं। जिसने जाना हो, उसके साथ जुड़ जाना। लेकिन जुड़ने की हिम्मत तो जुटाते-जुटाते जुटती है। यह तो बात बनते-बनते बनती है। एकदम से नहीं हो जाती। तुम्हें धीरे-धीरे फुसलाना होता है। तुम्हें बड़ी कुशलता से फुसलाना होता है। तुम्हारे अहंकार को गलाना कोई साधारण खेल नहीं है। और बिना अहंकार गले सत्संग नहीं होता। तुम मिटो तो सत्संग हो। मैं मिट गया हूं, तुम भी मिट जाओ, तो अभी हमारे दोनों के शून्य एक हो जाएं।

शून्य दो नहीं होते। दो शून्यों को पास लाओ तो दो शून्य नहीं होते, एक शून्य बन जाता है। बस एकदम एक शून्य हो जाता है। दो शून्य जोड़ो, कि तीन शून्य जोड़ो, कि हजार शून्य जोड़ो, एक ही शून्य बनता है। वहां गणित के नियम लागू नहीं होते। शून्य गणित के नियम के बाहर है।

इधर मैं शून्य हुआ बैठा हूं। यह जो नाद है, शून्य का नाद है। इस नाद के साथ तुम जुड़ सकते हो, अगर शून्य हो जाओ। सत्संग होगा, हरिदेव ! संतों की वाणी पढ़ते-पढ़ते चलो इतना तो हुआ कि तुम यहां आ गये। यहां भी तुम इसलिए आ गये होओगे कि सोचा होगा कि संतों पर चर्चा हो रही है। फंस गये ! संतों पर चर्चा तो हो रही है, मगर पीछे मामला और है। ऐसे जैसे कि मछली को फांसते हैं न तो कांटे में आटा लगा देते हैं। मछली कांटे में तो फंसने आती नहीं। कांटा देखकर तो दूर-दूर भागती है मगर आटे को देखकर चली आती है। इधर अटका गले में आटा, तब पता चलता है कि फंस गई, कांटे में उलझ गई। मगर तब तक बहुत देर हो चुकी। अब लौटने का कोई उपाय न रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये पलटू, ये कबीर, ये दादू, ये मलूक, ये सब आटे हैं। कांटा तो सत्संग का है।

चलो इसी बहाने आ गये। पलटू में रस रहा होगा, तो सोचा हरिदेव ने कि चले चलें ! पलटू को इतना पढ़ा, अध्ययन किया, मनन किया, अब जरा पलटू पर सुनें कि पलटू पर कोई जाग्रत पुरुष क्या कहता है ? मगर अब लौटने के बाहर है मामला ! हरिदेव, कांटा तो फंस गया ! संन्यास ले बैठे ! यह तो तुम सोचकर भी न आए थे। तुम्हारे सोचे थोड़े ही कुछ चीजें होती हैं। बहुत-सी चीजें हैं तुम्हारे बिना सोचे होती हैं, वे ही बहुमूल्य हैं। तुम्हारे सोचे तो क्षुद्र होता है। शास्त्रों के सहारे कहीं पहुंचोगे नहीं—न कहीं कोई कभी पहुंचा है।

वतरणी करोगे पार
दूसरों के कंधों पर
अंधों की जमात में
अपंगों का अभिनय ?
कटवा लो अपनी टांगे
टांग दो दरख़्तों पर
नंगापन पतझर का
कुछ तो ढग जाएगा।
नये फूल-पत्ते तो
खून से सींचे बिना
झेल नहीं पाते
लू-लपटों का उच्छ्वास।
प्लास्टिक के फूलों से
बाग़ को सजाने का
शौक़ नया चर्राया
पानी मर गया है शायद
मालियों की पीढ़ियों का
कोई तय्यार नहीं
खाद बन जाने को।

और जब लोग खाद बन जाने को तैयार नहीं होते, तो सत्संग कहां ? और अब लोग खाद बन जाने को तैयार नहीं होते, तो फिर प्लास्टिक के फूलों से ही काम चलाना पड़ता है। शास्त्र तो प्लास्टिक के फूल हैं। सत्संग तो पास आने की कला है, गुरु के पास आने की कला है।

तुम्हारा किसी से प्रेम हो जाए—किसी स्त्री से, किसी पुरुष से, तो तुम उसकी तसवीर से काम चला लोगे ? तसवीर को छाती से लगाकर मन भर जाएगा ? नहीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम जीवित व्यक्ति के करीब होना चाहोगे, उसका हाथ हाथ में लेना चाहोगे, उसका आलिंगन करना चाहोगे, उसके जीवन में अपने को डुबोना चाहोगे। उसके जीवन को अपने में डुबोना चाहोगे। सत्संग भी वैसा ही है। एक और ऊंचे आयाम में यह भी एक गहन प्रेम है। प्रेम से भी गहन प्रेम है।

इतना मत दूर रहो
गंध कहीं खो जाए
आने दो आंच
रोशनी न मन्द हो जाए

देखा तुमको मैंने कितने जन्मों के बाद
चम्पे की बदली-सी धूप छांह आस-पास
घूम सी गई दुनिया यह भी न रहा याद
बह गया है वक़्त लिए सारे मेरे पलाश

ले लो ये शब्द
गीत भी न कहीं सो जाए
आने दो आंच
रोशनी न मन्द हो जाए

उत्सव से तन पर सजा ललचाती मेहराबें
खींच लीं मिठास पर क्यों शीशे की दीवारें
टकरा कर डूब गईं इच्छाओं की नावें
लौट लौट आई हैं मेरी सब झनकारें

नेह फल नाजुक
न खिलना बंद हो जाए
आने दो आंच
रोशनी न मन्द हो जाए

क्या कुछ कमी थी मेरे भरपूर दान में
या कुछ तुम्हारी नजर चुकी पहिचान में
या सब कुछ लीला थी तुम्हारे अनुमान में
या मैंने भूल की तुम्हारी मुस्कान में

खोलो देह-बंध
मन समाधि-सिंधु हो जाए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आने दो आंच
रोशनी न मंद हो जाए।
इतना मत दूर रहो
गन्ध कहीं खो जाए

प्रेमी प्रेयसी के करीब होना चाहता है। प्रेयसी प्रेमी के करीब होना चाहती है।

इतना मत दूर रहो
गन्ध कहीं खो जाए
आने दो आंच
रोशनी न मन्द हो जाए

ऐसी ही घटना एक और महत्तर तल पर शिष्य और गुरु के बीच घटती है। उसका नाम सत्संग है। जब गुरु की आंच शिष्य के अहंकार तक पहुंचने लगती और उसे पिघलाने लगती है। जब गुरु की प्रज्ज्वलित अग्नि शिष्य को राख करने लगती है।

पास आओ, हरिदेव ! और-और पास आओ ! दूर-दूर न खड़े रहो। शास्त्रों में बहुत दिन डूबे रहने के कारण दूर-दूर रहने की आदत हो जाती है। शास्त्र और आदमी के बीच पास होना होता ही नहीं। शास्त्र में कोई आंच ही नहीं होती, तो डर क्या ? शास्त्र तो ठंडा है, मुर्दा लाश है !

तुम सौभाग्यशाली हो, एक ऐसी जगह आ गये हो, जहां शास्त्र अभी जीवित है, जहां शास्त्र अभी जन्म ले रहा है। लेकिन पास आओ ! आंच को झेलो ! जलो ! आंच को पिघलाने दो तुम्हारी बर्फ जैसी स्थिति को। अहंकार के ठंडेपन को। बह जाने दो ! पिघल जाए यह बर्फ तुम्हारी, बह जाओ तुम बिलकुल, रह जाए भीतर रिक्त शून्य, तो पूर्ण उतरेगा। तब तुम जानोगे। उसके पहले कोई जानना नहीं है।

आखिरी प्रश्न : ओशो,
कोई इंसान इंसान को भला क्या देता है
आदमी सिर्फ बहाना है, बस खुदा देता है
वह जहन्नुम भी दे तो करूं शुक्र अदा
कोई अपना ही समझकर तो सजा देता है

हरि भारती ! बात तो पते की कही है, मगर तुम्हारी अपनी नहीं है ! पते की है। जिसने कही होगी, जानी होगी। उसके लिए पते की। तुम्हारे लिए तो खतरनाक भी हो सकती है।

तुम कहते हो—

कोई इंसान इंसान को भला क्या देता है
आदमी सिर्फ बहाना है, बस खुदा देता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसने जान कर कहा, ठीक कहा। लेकिन अनजान के हाथ में इसका अर्थ बिलकुल उलटा हो जाएगा। जिसने जानकर कहा, उसका तो अर्थ यह है कि खुदा ही है, आदमी है कहां ! इसलिए आदमी क्या देगा। और क्या लेगा ! देने वाला भी वही है, लेने वाला भी वही है।

लेकिन जब न जानने वाला इस शब्द को पकड़ेगा, तो उसका अर्थ यह होता है कि आदमी में क्या रखा है ! आदमी क्या ले-दे सकता है ! जब देनेवाला तो खुदा है तो तुम आदमी के प्रति कृतज्ञता छोड़ दोगे, प्रेम छोड़ दोगे, अनुग्रह का भाव छोड़ दोगे। यह तुम्हारी आदमी के प्रति निन्दा बन जाएगी। कोई इंसान इंसान को भला क्या देता है ! इसलिए किसी इंसान के चरणों में क्यों झुकना ? और किसी इंसान को धन्यवाद क्यों देना ? देनेवाला तो खुदा है ! यह खुदा सिर्फ तुम्हारा बहाना है। यह आदमी को धन्यवाद न देना पड़े, इसलिए अच्छी आड़ हो गयी; सुन्दर आड़ हो गयी, बड़ी प्यारी आड़ खोज ली ! लोग बहुत जालसाज हैं इस मामले में। अनजाने होता है यह, मूर्च्छा में होता है।

लेकिन आदमी से अगर खुदा ही देता है, अगर आदमी के भीतर भी खुदा ही है, तब तो फिर आदमी-आदमी के चरण में झुको। फिर तो जो मिल जाए उसके चरण में झुको। क्योंकि परमात्मा ही है और तो कोई है नहीं !

ये दो अर्थ हो सकते हैं। एक अर्थ कि सब में परमात्मा है। इसलिए पत्थर के सामने भी झुक जाओ। इसलिए बुरे-से-बुरे आदमी में भी परमात्मा है। कैसे ही गंदे वस्त्र उसने पहन रखे हों, परमात्मा है। किसी शक्ल में आए, परमात्मा है।

शिर्डी के साईं बाबा के पास एक ब्राह्मण रोज भोजन लेकर आता था। वे रहते मस्जिद में थे। किसी को पता नहीं वे हिन्दू थे कि मुसलमान। ऐसे लोगों के बाबत पता लगाना मुश्किल भी होता है। अब तुम मेरे बाबत कभी पता लगा पाओगे कि मैं हिन्दू हूं कि मुसलमान; कि ईसाई, कि बौद्ध, कि यहूदी, कि पारसी ! तुम कभी पता न लगा पाओगे। क्यों ? क्योंकि ऐसे व्यक्ति तो किसी सीमा में आबद्ध होते ही नहीं। ...रहते थे मस्जिद में और यह ब्राह्मण रोज भोजन लाता। इसका नियम था : जब तक साईं बाबा को भोजन न करा ले, तब तक खुद भोजन न करे। कभी देर भी हो जाती। कभी साईं बाबा मस्त हैं भजन में ! और कभी मस्त हैं लोगों को पत्थर मारने में, डंडे लेकर दौड़ने में ! कभी मस्त हैं लोगों को गालियां देने में ! भीड़-भाड़ मच गयी है ! तो देर-सबेर हो जाती।

एक दिन साईं बाबा ने कहा कि तू नाहक पांच मील चल कर आता है। पहुंचते-पहुंचते सांझ हो जाती है, तब तू भोजन कर पाता है। कल से मैं ही आ जाऊंगा। तू कल मत आना। बड़ा खुश हुआ ब्राह्मण ! कल तो उसने खूब सुस्वादु भोजन बनाए, मिष्ठान्न बनाए। सुबह से ही जल्दी-जल्दी उठकर सब तैयारी कर डाली कि पता नहीं कब आ जाएं। नौ बजे, दस बजे, ग्यारह बजे, बारह बजे, एक बजे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...कोई पता नहीं ! दो बज गये, कोई पता नहीं। चार बज गये, कोई पता नहीं, भागा थाली लेकर ! सांझ होते-होते पहुंचा। साईं बाबा ने कहा : आप भूल गये क्या ? साईं बाबा ने कहा : मैं और भूल जाऊं ! तू सोचता है, मैं कुछ भूल सकता हूं ! मैं आया था, मगर नासमझ, तूने मुझे बाहर से ही दुतकार दिया ! दुतकारा ही नहीं, तू डंडा लेकर मुझे मारने दौड़ा ! उस ब्राह्मण ने कहा, हद हो गयी, क्या बातें कर रहे हैं आप ! होश में हैं ? बैठा हूं सुबह से थाली सजाए, एक आदमी नहीं फटका ! साईं बाबा ने कहा, मैंने कब कहा कि मैं आदमी की शक्ल में आऊंगा ? एक कुत्ता नहीं आया था ? वह तो भूल ही गया था ब्राह्मण; उसे याद आया कि हां, एक कुत्ता आया था। न केवल आया था बल्कि कई बार आने की कोशिश की...और एकदम थाली की तरफ ही जाता था ! उसने कहा, हां एक कुत्ता आया था और एकदम थाली की तरफ ही जाता था। साईं बाबा ने कहा, मैंने सोचा कि थाली तूने मेरे लिए सजाई तो मैं थाली की तरफ जाता था। और तू एकदम डंडा मारता था ! तूने घुसने ही न दिया घर में, तो मैं लौट आया।

ब्राह्मण ने कहा : मुझे माफ करें। मुझसे भूल हो गयी। मुझे क्या पता कि आपने मुझे एक अद्भुत संदेश दिया, कि वही, एक ही सब में विराजमान है ! कल, कल आप आएं ! ऐसा नहीं होगा।

कल बैठा ब्राह्मण थाली लगाए...कुत्ते का आगमन कब हो ? मगर कुत्ते का कोई पता नहीं। मुहल्ले में जाकर चक्कर भी मार आया कि कहीं कुत्ता भटक न गया हो। एक-दो कुत्ते मिले भी ऐसे आवारा, उनको लाने की भी कोशिश की, मगर वे आएं न ! धमकाया, डंडा भी दिखाया, मगर वे और भाग गये ! बड़ा हैरान...! फिर वही सांझ होने लगी, फिर आया और कहा कि महाराज, दिन-भर हो गया, परेशान हो गया, गांव के आवारा कुत्तों को खदेड़ता फिर रहा हूं, यह मैंने कभी सोचा नहीं था कि गांव के आवारा कुत्ते और सुस्वादु भोजन लेने से इनकार कर देंगे ! मैं उनको बुलाने जाता हूं, वे भागते हैं। जैसे कि किसी जाल में फंसा रहा हूं।

साईं बाबा ने कहा : मैं तो आया था, मगर तूने मुझे दुतकार दिया। मैं एक भिखमंगे की तरह आया था। अरे, उसने कहा, तो कल ही क्यों नहीं कहा ! आज मैं कुत्ते की राह देखता रहा और आपको भिखमंगे की तरह आने की सूझी ! एक भिखमंगा जरूर दो-तीन बार आया, मैं तो उस पर इतना नाराज हुआ कि तू रास्ता पकड़ता है कि नहीं ? यह भोजन तेरे लिए नहीं बनाया है। तो आप भिखमंगे की शक्ल में आए थे ? कल !

साईं बाबा ने कहा : तुझसे नहीं चलेगा। कल तू भिखमंगे की राह देखेगा। मेरा क्या भरोसा कल मैं किस शक्ल में आऊं ! तू ही ले आया कर ! वही आसान है। इसमें तू और झंझट में पड़ गया, और उलझन में पड़ गया।

विराट है अस्तित्व।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो जानते हैं, उनके लिए, उनके ओठों पर यही शब्द, हरि भारती, और अर्थ रखेंगे—

कोई इंसान इंसान को भला क्या देता है
आदमी सिर्फ बहाना है, बस खुदा देता है

इसमें इंसान का विरोध नहीं है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति के भीतर परमात्मा की स्वीकृति है। मगर बिना जाने, अनजाने में, अज्ञान में, मूर्च्छा में अर्थ बिलकुल बदल जाएगा। इसमें खुदा सिर्फ बहाना है। तुम्हें खुदा का कुछ पता है ? खुदा कभी मिला है ? कहीं आदमी मिला, कहीं कुत्ता मिला, कहीं बिल्ली मिली, कहीं हाथी मिला, कहीं घोड़ा मिला, कहीं झाड़ मिला—खुदा तुम्हें कहीं मिला है ? खुदा की आड़ में तुम सब से इनकार कर दोगे। और ऐसा खुदा कहीं भी नहीं है, जिसकी तुम आड़ ले रहे हो। खुदा तो सब में छिपा है। जहां भी खुदा का भाव है, वहीं खुदा है।

देख कहीं पाछे तू पछताए
घर-घर वही गीत सतरंगा जिसका ध्यान सताए
देख कहीं पाछे तू पछताए

दर्पण में मुंह देख साए के पीछे हाथ पसार
दीवारों के बीच बैठकर ढूंढ़ अपना संसार
घर-घर वही हंसे जब कोई नई कली शरमाए
देख कहीं पाछे तू पछताए

कलाबाज़ियां खाते नन्हें मुन्ने करें कुलेल,
घर में नया देवता उतरे जब फल लाए बेल
रात पड़े नीली आंखों में वही हंसे मुस्काए
देख कहीं पाछे तू पछताए

सुन, दुख उसकी टेढ़ी चितवन सुख उसकी मुस्कान
अपने में अपना कहलाए बैरी में ओशो
इस सराय में भेस बदल कर वही आए वही जाए
देख कहीं पाछे तू पछताए

हरि भारती, स्मरण रखो, वही है ! आदमी से भी देता है, तो वही देता है। लेकिन इस कारण आदमी का अनुग्रह मत भूल जाना। वृक्षों से देता है तो वही देता है। लेकिन इस कारण वृक्षों का अनुग्रह मत भूल जाना। क्योंकि जो जितने अनुग्रह से भर जाए, उतना ही परमात्मा के निकट आ जाता है। अनुगृहीत होना ही प्रार्थना की परम परिष्कृति है।

आज इतना ही।

●●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओशो—एक परिचय

बुद्धपुरुषों की अमृतधारा में ओशो एक नया प्रारंभ हैं, वे अतीत की किसी भी धार्मिक परंपरा या शृंखला की कड़ी नहीं हैं। ओशो से एक नए युग का शुभारंभ होता है और उनके साथ ही समय दो सुस्पष्ट खंडों में विभाजित होता है : ओशो पूर्व तथा ओशो पश्चात।

ओशो के आगमन से एक नए मनुष्य का, एक नए जगत का, एक नए युग का सूत्रपात हुआ है, जिसकी आधारशिला अतीत के किसी धर्म में नहीं है, किसी दार्शनिक विचार-पद्धति में नहीं है। ओशो सद्यःस्नात धार्मिकता के प्रथम पुरुष हैं, सर्वथा अनूठे संबुद्ध रहस्यदर्शी हैं।

ओशो एक नवोन्मेश हैं नए मनुष्य के, नई मनुष्यता के। ओशो का यह नया मनुष्य 'ज़ोरबा दि बुद्धा' एक ऐसा मनुष्य है, जो ज़ोरबा की भांति भौतिक जीवन का पूरा आनंद मनाना जानता है और जो गौतम बुद्ध की भांति मौन होकर ध्यान में उतरने में भी सक्षम है—ऐसा मनुष्य जो भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों तरह से समृद्ध है। 'ज़ोरबा दि बुद्धा' एक समग्र व अविभाजित मनुष्य है। ओशो का यह नया मनुष्य भविष्य की एकमात्र आशा है; इसके बिना पृथ्वी का कोई भविष्य शेष नहीं है।

अपने प्रवचनों के द्वारा ओशो ने मानव-चेतना के विकास के हर पहलू को उजागर किया। बुद्ध, महावीर, कृष्ण, शिव, शांडिल्य, नारद, जीसस के साथ ही साथ भारतीय अध्यात्म-आकाश के अनेक नक्षत्रों—आदिशंकराचार्य, गोरख, कबीर, नानक, मलूकदास, रैदास, दरियादास, मीरा आदि पर उनके हजारों प्रवचन उपलब्ध हैं। जीवन का ऐसा कोई भी आयाम नहीं है जो उनके प्रवचनों से अस्पर्शित रहा हो। योग, तंत्र, ताओ, झेन, हसीद, सूफी जैसी विभिन्न साधना-परंपराओं के गूढ़ रहस्यों पर उन्होंने सविस्तार प्रकाश डाला है। साथ ही राजनीति, कला, विज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शन, शिक्षा, परिवार, समाज, गरीबी, जनसंख्या-विस्फोट, पर्यावरण तथा संभावित परमाणु युद्ध के व उससे भी बढ़कर एड्स महामारी के विश्व-संकट जैसे अनेक विषयों पर भी उनकी क्रांतिकारी जीवन-दृष्टि उपलब्ध है।

शिष्यों और साधकों के बीच दिए गए उनके ये प्रवचन छह सौ पचास से भी अधिक पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं और तीस से अधिक भाषाओं में अनुवादित हो चुके हैं। वे कहते हैं, "मेरा संदेश कोई सिद्धांत, कोई चिंतन नहीं है। मेरा संदेश तो रूपांतरण की एक कीमिया, एक विज्ञान है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओशो का जन्म मध्य प्रदेश के कुचवाड़ा गांव में 11 दिसम्बर, 1931 में हुआ। 21 मार्च, 1953 को उनके जीवन में परम संबोधि का विस्फोट हुआ, वे बुद्धत्व को उपलब्ध हुए और 19 जनवरी, 1990 को, ओशो कम्यून इंटरनेशनल में देह-त्याग हुआ।

ओशो की समाधि पर स्वर्ण अक्षरों में अंकित है :

OSHO
Never Born
Never Died
Only Visited this
Planet Earth between
Dec. 11, 1931 — Jan.19, 1990

ध्यान और सृजन का यह अनूठा नव-संन्यास उपवन, ओशो कम्यून, ओशो की विदेह-उपस्थिति में भी आज पूरी दुनिया के लिए एक ऐसा प्रबल चुंबकीय आकर्षण-केंद्र बना हुआ है कि यहां निरंतर नए-नए लोग आत्म-रूपांतरण के लिए आ रहे हैं तथा ओशो की सघन-जीवंत उपस्थिति में अवगाहन कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये मनुष्य के लिए एक नया दृष्टिकोण

3 पत्रिकाएं-
पथ में आपकी पाथेय...

(1)

OSHO TIMES INTERNATIONAL

अंग्रेजी, अब इंटरनेट में www.osho.com पर उपलब्ध

(2)

OSHO asia edition TIMES

अंग्रेजी, एशिया संस्करण (मासिक), मूल्य प्रति अंक: 20 रु.
वार्षिक सदस्यता शुल्क: 220रु.* तथा 380रु.**
अर्ध-वार्षिक सदस्यता शुल्क: 130रु.* तथा 225रु.**

*साधारण डाक से, **रजिस्टर्ड डाक से

(3)

ओशो टाइम्स इंटरनेशनल

हिन्दी (मासिक), मूल्य प्रति अंक: 20 रु.
वार्षिक सदस्यता शुल्क: 220रु.* तथा 380रु.**
अर्ध-वार्षिक सदस्यता शुल्क: 130रु.* तथा 225रु.**

ओशो टाइम्स (हिंदी) का विशेष वार्षिकांक–'स्मारिका'
...अब हर वर्ष 11 दिसम्बर पर उपलब्ध

संपर्क-सूत्र

ताओ पब्लिशिंग प्रा. लि.

50, कोरेगांव पार्क, पुणे-411001 फोन: 020-6128562 फैक्स: 020-6124181
E-Mail: othsubs@osho.net INTERNET WEBSITE: www.osho.com

नये मनुष्य के लिए एक नया दृष्टिकोण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओशो का हिंदी साहित्य

उपनिषद्
सर्वसार उपनिषद्
कैवल्य उपनिषद्
अध्यात्म उपनिषद्
कठोपनिषद्
ईशावास्य उपनिषद्
निर्वाण उपनिषद्
आत्म-पूजा उपनिषद्
केनोपनिषद्
मेरा स्वर्णिम भारत (विविध उपनिषद्-सूत्र)

कृष्ण
गीता-दर्शन (आठ भागों में अठारह अध्याय)
कृष्ण-स्मृति

महावीर
महावीर-वाणी (दो भागों में)
जिन-सूत्र (दो भागों में)
महावीर या महाविनाश
महावीर : मेरी दृष्टि में
ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया

बुद्ध
एस धम्मो सनंतनो (बारह भागों में)

अष्टावक्र
अष्टावक्र महागीता (छह भागों में)

लाओत्से
ताओ उपनिषद् (छह भागों में)

कबीर
सुनो भई साधो
कहै कबीर दीवाना
कहै कबीर मैं पूरा पाया
न कानों सुना न आंखों देखा (कबीर व फरीद)

शांडिल्य
अथातो भक्ति जिज्ञासा (दो भागों में)

अन्य रहस्यदर्शी
नाम सुमिर मन बावरे (जगजीवन)
अरी, मैं तो नाम के रंग छकी (जगजीवन)
कानों सुनी सो झूठ सब (दरिया)
अमी झरत बिगसत कंवल (दरिया)
हरि बोलौ हरि बोल (सुंदरदास)
ज्योति से ज्योति जले (सुंदरदास)
अजहूं चेत गंवार (पलटू)
सपना यह संसार (पलटू)
काहे होत अधीर (पलटू)
जस पनिहार धरे सिर गागर (धरमदास)
का सोवै दिन रैन (धरमदास)
सबै सयाने एक मत (दादू)
पिव पिव लागी प्यास (दादू)
कन थोरे कांकर घने (मलूकदास)
रामदुवारे जो मरे (मलूकदास)
भक्ति-सूत्र (नारद)
शिव-सूत्र (शिव)
भजगोविन्दम् मूढ़मते (आदिशंकराचार्य)
एक ओंकार सतनाम (नानक)
जगत तरैया भोर की (दयाबाई)
बिन घन परत फुहार (सहजोबाई)
पद घुंघरू बांध (मीरा)
नहीं सांझ नहीं भोर (चरणदास)
संतो, मगन भया मन मेरा (रज्जब)
कहै वाजिद पुकार (वाजिद)
मरौ हे जोगी मरौ (गोरख)
सहज-योग (सरहपा-तिलोपा)
बिरहिनी मंदिर दियना बार (यारी)
प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया (दूलन)
दरिया कहै सब्द निरबाना (दरियादास बिहारवाले)
हंसा तो मोती चुगैं (लाल)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु-परताप साध की संगति (भीखा)
मन ही पूजा मन ही धूप (रैदास)
झरत दसहुं दिस मोती (गुलाल)
जरथुस्त्र : नाचता-गाता मसीहा (जरथुस्त्र)

प्रश्नोत्तर

नहिं राम बिन ठांव
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र
मृत्योर्मा अमृतं गमय
प्रीतम छवि नैनन बसी
रहिमन धागा प्रेम का
उड़ियो पंख पसार
सुमिरन मेरा हरि करैं
पिय को खोजन मैं चली
साहेब मिल साहेब भये
जो बोलैं तो हरिकथा
बहुरि न ऐसा दांव
ज्यूं था त्यूं ठहराया
ज्यूं मछली बिन नीर
दीपक बारा नाम का
अनहद में बिसराम
लगन महूरत झूठ सब
सहज आसिकी नाहिं
पीवत रामरस लगी खुमारी
रामनाम जान्यो नहीं
सांच सांच सो सांच
आपुई गई हिराय
बहुतेरे हैं घाट
कोंपलें फिर फूट आईं
फिर पत्तों की पांजेब़ बजी
फिर अमरित की बूंद पड़ी
क्या सोवै तू बावरी
चल हंसा उस देस
कहा कहूं उस देस की
पंथ प्रेम को अटपटो
माटी कहै कुम्हार सूं
मैं धार्मिकता सिखाता हूं, धर्म नहीं

झेन, सूफी और उपनिषद् की कहानियां

बिन बाती बिन तेल
सहज समाधि भली
दीया तले अंधेरा

तंत्र

संभोग से समाधि की ओर
तंत्र-सूत्र (पांच भागों में)

योग

पतंजलि : योग-सूत्र (पांच भागों में)
योग : नये आयाम

विचार-पत्र

क्रांति-बीज
पथ के प्रदीप

पत्र-संकलन

अंतर्वीणा
प्रेम की झील में अनुग्रह के फूल
पाथेय

बोध-कथा

मिट्टी के दीये

ध्यान, साधना

ध्यानयोग : प्रथम और अंतिम मुक्ति
नेति-नेति
चेति सकै तो चेति
हसिबा, खेलिबा, धरिबा ध्यानम्
समाधि कमल
साक्षी की साधना
धर्म साधना के सूत्र
मैं कौन हूं
समाधि के द्वार पर
अपने माहिं टटोल
ध्यान दर्शन
तृषा गई एक बूंद से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यान के कमल
जीवन संगीत
जो घर बारे आपना
प्रेम दर्शन

साधना-शिविर

साधना-पथ
मैं मृत्यु सिखाता हूं
जिन खोजा तिन पाइयां
समाधि के सप्त द्वार (ब्लावट्स्की)
साधना-सूत्र (मेबिल कॉलिन्स)
ध्यान-सूत्र
जीवन ही है प्रभु
रोम-रोम रस पीजिए

राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याएं

देख कबीरा रोया
स्वर्ण पाखी था जो कभी और
अब है भिखारी जगत का
शिक्षा में क्रांति
नए समाज की खोज
नए भारत की खोज
नए भारत का जन्म
नारी और क्रांति
शिक्षा और धर्म
भारत का भविष्य

विविध

अमृत-कण
मैं कहता आंखन देखी
एक-एक कदम
जीवन क्रांति के सूत्र

जीवन रहस्य
करुणा और क्रांति
विज्ञान, धर्म और कला
शून्य के पार
प्रभु मंदिर के द्वार पर
तमसो मा ज्योतिर्गमय
प्रेम है द्वार प्रभु का
अंतर की खोज
अमृत की दिशा
अमृत वर्षा
अमृत द्वार
चित चकमक लागे नाहिं
एक नया द्वार
प्रेम गंगा
समुंद समाना बुंद में
सत्य की प्यास
शून्य समाधि
व्यस्त जीवन में ईश्वर की खोज
अज्ञात की ओर
धर्म और आनंद
जीवन-दर्शन
जीवन की खोज
क्या ईश्वर मर गया है
नए मनुष्य का धर्म
धर्म की यात्रा
स्वयं की सत्ता
सुख और शांति
अनंत की पुकार

201473

ओशो के ऑडियो-वीडियो प्रवचन एवं साहित्य के संबंध में
समस्त जानकारी हेतु संपर्क सूत्र :

साधना फाउंडेशन

17 कोरेगांव पार्क, पुणे-411001

फोन : 020-6136655 फैक्स : 020-6124181

E-mail: distrib@osho.net Website: www.osho.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Ac

Class 18.3.2002

Cat on

Tag etc.

Filing

E.A.R.

Any other 18.3.2002

Checked

Recommended By

Compiled
2002-2003

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओशो

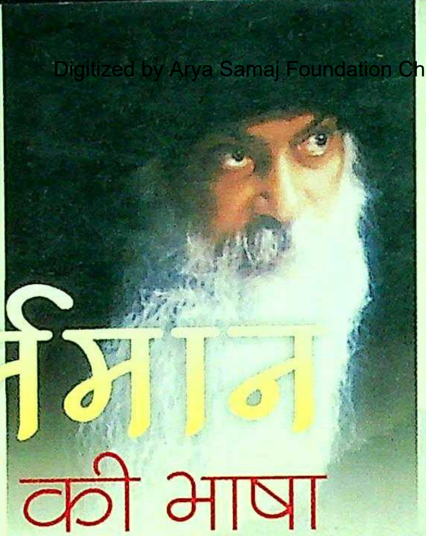

वर्तमान
धर्म की भाषा

"बुद्ध जैसे व्यक्ति, कबीर-नानक-पलटू जैसे व्यक्ति शुद्ध वर्तमान में जीते हैं। न कोई अतीत है, न पीछे की कोई याद है। धूल-धवांस इकट्ठी ही नहीं करते ऐसे लोग। न कोई भविष्य है, न भविष्य की कोई चिंता है। कूड़ा-करकट में रस ही नहीं लेते ऐसे लोग। यह क्षण, बस यह शुद्ध क्षण पर्याप्त है। इस क्षण के आर-पार कुछ भी नहीं है। इस क्षण में डुबकी मारते हैं - वही समाधि है। शुद्ध वर्तमान में डूब जाना समाधि है। अतीत में रहना - मन में रहना; भविष्य में रहना-मन में रहना। ये मन के रहने के ढंग हैं - अतीत और भविष्य। वर्तमान में, शुद्ध वर्तमान में डूब जाना... जरा एक क्षण को अनुभव करो! जैसे बस यही क्षण है। मैं हूं, तुम हो, ये वृक्ष हैं, ये पक्षियों की चहचहाहट है, ये सन्नाटा है; बस यह क्षणमात्र, अपनी परिपूर्ण शुद्धता में - न पीछे की कोई याद है, न आगे का कोई हिसाब है, स्मृति छूट गई, फिर इस अंतराल में शाश्वत की प्रतीति होने लगेगी। यही अंतराल समाधि है।"

-ओशो

मूल्य: 60/-

ISBN 81-223-0707-8

पुस्तक महल®

Fax: 011-3280567, 011-3260518
E. Mail: pustakmahal@vsnl.com
website: www.pustakmahal.com

दिल्ली • मुंबई • बंगलोर • पटना • हैदराबाद

Discover the world of PUSTAK MAHAL Books — visit our website:
www.pustakmahal.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar